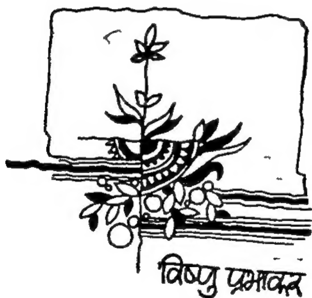
राह चलते चलते



सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

राह चलते चलते



मूल्य पचीस रुपये
प्रकाशक जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज,
नई दिल्ली ११०००२
संस्करण प्रथम, १९८५

कलापक्ष पाली
मुद्रक शान प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली ११००३२

RAHA CHALTE CHALTE (Memours) by Vishnu Prabhakar
Price Rs 25-00

दो शब्द

यह संग्रह अनेक कारणों से लीक से हटकर है। इसमे जिन व्यक्तियों की चर्चा हुई है उनमे से अधिकांश न तो महान साहित्यकार हैं, न अन्य किसी क्षेत्र की अन्यतम उपलब्धि। वे सभी भारतीय भी नही हैं। बद्रीनाथ, केदारनाथ और कश्मीर के व्यक्तियों को छोड़कर राष्ट्रीयता की दृष्टि से वे सभी विदेशी हैं।

अपनी अनेक यात्राओं के दौरान मे बिना किसी पूर्व योजना के अनायास ही उनके सम्पर्क में आया। तीन-चार व्यक्तियों को छोड़कर किसी से दूसरी बार मिलने का अवसर तक नहीं मिला। कुछ के बारे मे तो मैं यह भी नहीं जानता कि वे थे कौन? अब हैं या नहीं, यह पता लगाने का भी कोई मार्ग शेष नहीं है। इनमे केवल तीन व्यक्ति ऐसे हैं जिनसे अब भी सम्पर्क बना हुआ है। इनमे से एक नेपाल के हैं तथा दो भारत में आकर बस गये हैं।

इसी अनियोजित प्रथम मिलन के कुछ क्षणो ने मुझ पर जो प्रभाव छोड़ा उसी को शब्द दिये हैं मैंने। ऐसे ही क्षण सचमुच प्यार के क्षण होते हैं और मनुष्य की पहचान के भी। यही पहचान मनुष्यता की कसौटी है।

मनुष्य को सचमुच मनुष्य बनाने की शिक्षा देने वाला कोई विश्वविद्यालय अभी तक स्थापित नहीं हो सका है। शायद हो भी नही सकेगा। केवल यात्राएँ ही मनुष्य को मनुष्य बनने की राह दिखा सकती हैं। घुमक्कड़-शास्त्र निश्चय ही मनुष्य बनने की दिशा मे मार्गदर्शन कर सकता है।

इस दृष्टि से प्रत्येक प्राणी के लिए यात्रा करना अनिवार्य होना चाहिए। मात्र नियोजित यात्रा ही नहीं, अनियोजित यात्राएँ भी होनी

चाहिए। वे ही वास्तविक यात्राएँ होती हैं। उन्ही म, पथ घाट मे मिले वास्तविक और अवास्तविक मनुष्य की पहचान होती है।

इस सग्रह मे जितने व्यक्तियो की चर्चा हो सकी है उन्हीं से मेरा सबध सधा हो, एसा भी नही है। प्यार की भाषा जानने वाले अनेक अनपढ व्यक्तियो के सम्पर्क म आया हूँ। आज के नानारूप हिंसा के युग मे ये टिमटिमाते दीप ही हम मानवीय सवेदना के क्षेत्र म ले जा सकते हैं। प्यार के ढाई अक्षर पढकर ही तो मनुष्य पडित होता है।

इसी आशा के साथ यह पुस्तक मैं उन्ही प्रेम दीवानो को समर्पित करता हूँ जो आने वाल युग की आशा हैं।

८१८ कुण्डेवालान
अजमेरी गट दिल्ली ११०००६

विष्णु प्रभाकर
२२ ५ ८५

क्रम

चाहिए। वे ही वास्तविक यात्राएँ होती हैं। उन्ही मे, पथ घाट म मिले वास्तविक और अवास्तविक मनुष्य की पहचान होती है।

इस सग्रह म जितने व्यक्तियो की चर्चा हो सकी है उन्ही से मेरा सबध सधा हो, ऐसा भी नही है। प्यार की भाषा जानने वाले अनेक अनपढ व्यक्तियो के सम्पर्क म आया हूँ। आज के नानारूप हिंसा के युग मे ये टिमटिमाते दीप ही हमे मानवीय सवेदना के क्षेत्र म ले जा सकते हैं। प्यार के ढाई अक्षर पढ़कर ही तो मनुष्य पडित होता है।

इसी आशा के साथ यह पुस्तक मैं उन्ही प्रेम दीवानो को समर्पित करता हूँ जो आने वाले युग की आशा हैं।

८१८ कुण्डेवालान
अजमेरी गेट दिल्ली ११०००६

विष्णु प्रभाकर
२२ ५ ८५

क्रम

पर्वत से भी ऊँचा

विष्णुप्रयाग की थका देने वाली उतराई और चढ़ाई के बाद जब मैं घाटी में बसी बल्दोड़ा चट्टी पर पहुँचा, तभी वह भी बद्रीनाथ से लौटता हुआ वहाँ आकर रुका। उस समय दिन के ग्यारह बज चुके थे और आसमान साफ था। मेरे सामने चारों ओर ऊँचे-ऊँचे भूधर ज्ञान की शुभ्र-स्वच्छ हिम को मस्तक पर धारण किये, अनन्त सम्पदा के गर्वोन्मत्त स्वामी की तरह, अहंकार की मुस्कान से सज्जित, अनन्त की ओर निहार रहे थे। नीचे अलख जगाती हुई हर्षोन्मत्त अलकनन्दा, विष्णुगंगा के आत्मसमर्पण को स्वीकार करने पागलों की भाँति भागी जा रही थी। प्रकृति की इस विशालता और महानता ने तब मुझे अभिभूत कर लिया। मैं उस क्षण सब कुछ भूलकर अपने बहुमूल्य दूरवीक्षण यंत्र द्वारा देवदार और ओक के वृक्षों के परे, सुगन्ध और मादित को नाभि में छिपाये रखने वाले कस्तूरा को खोजने लगा। कुछ क्षण पूर्व दाई (बोझा ढोने वाला) ने मुझे बताया था—"भालू और कस्तूरा, और कभी-कभी बाघ भी उस पार नीचे तक उतर आते हैं। तब साहब लोग उनका शिकार करते हैं।"

यद्यपि तब उनके आने की कोई सम्भावना नहीं थी, तो भी मुझे लगा कि हो सकता है वृक्षों की छाया में कोई कस्तूरा, मेरी तरह, साँस लेने रुक गया हो, पर मैं यन्त्र का उपयोग पूरी तरह कर भी न पाया था कि वह तंग घाटी अनेक व्यक्तियों के मुक्त अट्टहास से गूँज उठी। चकित होकर मैंने उस दिशा में देखा। एक दाई ने खिलखिलाते हुए कहा, "सुना बाबू जी।"

"क्या ?"

"यह बाबा कहते हैं, दर्शन तो हो गये, पर अब घर कैसे पहुँचें ?"

तब मेरी दृष्टि हँसी के पात्र उस बाबा पर गयी। देखा—एक क्षीणकाय

वृद्ध है, जिसका पतला मुख क्षीर के समान श्वेत बालों से ढका हुआ है परन्तु उनके बीच से झाँकते हुए उसके दोनों नयन अमित विश्वास से पूर्ण हैं। उसके पैर लड़खड़ाते हैं। उसने एक मैली धोती और कन्धे की ओर लगने वाले बटना का एक कुरता पहना है, जिसके भीतर मे निकलता हुआ जनेऊ उसके द्विजत्व का साक्षी है। उसकी कुल सम्पत्ति मे एक लाठी, एक कम्बल तथा एक वैसी ही मैली धोती की गणना की जा सकती है।

मैं अपना निरीक्षण पूर्ण करूँ, इससे पूर्व चट्टी के एक दुकानदार ने पूछा, "क्यों बाबा, क्या बात है?"

बाबा ने उत्तर दिया, "भूखा हूँ, चला नहीं जाता।"

"भूखे हो तो रोटी बना लो।"

"कैसे बना लूँ?"

"क्यों? आटा म कुछ नहीं है?"

बाबा ने नही सुना। जान पड़ा, वह बहरा भी है। प्रश्न के जोर मे दोहराए जाने पर उसने बताया कि उसके पास कुछ नहीं है।

"जान पड़ता है बाबा! तुम पडो के चक्कर मे पड गए थे। बड़े दुष्ट होते हैं ये लोग। सब कुछ छीन लेते हैं।"

बाबा ने बधिर के से उसी शान्त भाव से कहा, "पडे ने कुछ नहीं छीना। उसे तो बस आध सेर आटा दिया। मेरे पास वही था।"

फिर एक अट्टहास उठा जिसमे बाबा ने भी योग दिया। एक दुकानदार को शायद बाबा के भोलेपन पर कुछ दया आयी। वह उठा और एक तसले मे पाव भर आटा और नमक ले आया। बोला, "लो बाबा, आटा मथो और इस भट्ठी पर रोटी बना लो। तवा यह पडा है।"

उस क्षण बाबा के लड़खड़ाते हुए पैर और भी लड़खड़ाने लगे। नयनो मे तरलता चमक उठी पर उसके बाद उसमे जो स्फूर्ति उमड़ी वह अलखनन्दा के लिए स्पर्द्धा के योग्य हो सकती है। देखते-देखते उसने आटा मथा और उसको दो मोटी मोटी रोटी बनाईं। एक रोटी को तवे पर डाला, पलटा और फिर भट्ठी मे डाल दिया।

आसपास के व्यक्तियों ने यह सब देखा और हँसते हुए कहा, "बाबा! ऐसे बेसबरे मत बनो। रोटी कच्ची है।"

बहरे बाबा और भी बहरे हो गये। कुछ ही क्षणों में उसने दोनों रोटियाँ भट्टी से निकाल कर फिर तसले में रखी। फिर नल पर जाकर हाथ-पैर धोये और अंत में तसले को लेकर, मेरे पास ही उस तंग और नीची काली दीवारों वाली चट्टी में आ बैठा। दो क्षण मौन रहा, सम्भवतः तब वह अन्नपूर्णा का स्मरण कर रहा था। उसकी मुद्रा बता रही थी कि क्षुधा उसे क्रूरता से पुकार रही है और वे क्षण युग बन चले हैं। किसी तरह वे बीते और उसके बाद उसने कच्ची पक्की रोटी को मसल-मसल कर निगलना शुरू किया।

दाई ने फिर मजाक करते हुए कहा, "बेसबरे बाबा! रोटी कच्ची है।"

बाबा ने अब मुस्कराकर गरदन उठाई और बोला, "रोटियाँ कच्ची नहीं हैं। मैं तो घर भी ऐसी बनवाता हूँ। मेरे दाँत कहाँ हैं जिनसे करारी रोटियाँ चबाऊँ?"

"बाबा, साग लोगे?" दूसरे ने ठठोली की।

"नमक पड़ा है।" बाबा ने शान्त भाव से हाथ हिलाते हुए कहा।

मैं अब तक चुप था, परन्तु मेरे नयन उसकी प्रत्येक गतिविधि का निरीक्षण कर रहे थे। वह कैसे तसले में पड़ी हुई रोटी को तोड़ता और निगलता, कैसे रोटी का कच्चा-पक्का ग्रास गले में अटकता हुआ उतरता, फिर कैसे वह हिचकी लेता।

किसी ने फिर कहा, "बाबा मरेगा।"

दूसरा कुछ घृणा से बोला, "अरे, यूँही माँगता-खाता चला जाएगा। ऐसे दम्भियों को मौत नहीं आती।"

मैंने एक बार उस व्यक्ति को देखा और फिर बाबा को। कहने वाला सम्पन्न व्यक्ति था। वह उस श्रेणी का था, जो कहीं भी हो नियम से दिन में चार बार खाते हैं। जिनके आगे-पीछे नौकर घूमा करते हैं। उस पर भी वे श्रम के भार से पिसते रहते हैं। उनके लिए बाबा की जाति के नर-कंकाल, जो केवल श्रद्धा के बल पर बीहड़ वनों, विशाल नदियों और भयानक पथरीले मार्गों को पार कर जाते हैं, दम्भी और पाखंडी ही होते हैं।

कुछ अच्छा नहीं लगा। क्या बाबा सचमुच दम्भी है? मेरी दृष्टि फिर

उस पर जा ठहरीं। वह रोटियाँ निगल कर फिर नल की ओर जा रहा था। उसके पैर पूर्ववत सड़खड़ा रहे थे। कौन जाने, वे कहाँ जवाब दे दें? उसे अभी सैकड़ों मील चलना है। मौन बढ़ रहा है और गिरिश्रृंगों का हिम भी दिग्विजय के लिए निकल पड़ा है। परन्तु उसके पास कोई गरम कपड़ा नहीं है? क्या इसके घर कोई नहीं है? क्या वहां दूर ग्राम में बैठी इसकी बूढ़ा पत्नी, इसके पुत्र पौत्र, कोई इसकी राह नहीं देखता, कोई इसे याद नहीं करता?··· सहसा मुझे अपने घर की याद आ गई। मेरी पत्नी ने लिखा था—"मुन्ना आपकी याद में पागल हो रहा है। वह आपके कमरे में आता है और प्रत्येक वस्तु को उठा कर कहता है, यह मेरे पिताजी की है, मुझे तांगे में बिठा कर पिताजी के पास ले चलो ···।"

तब मेरे नयन भर आए और मेरे मन ने कहा—इस बाबा को भी कोई याद करता होगा। इसे घर पहुँचना ही चाहिए। मैं इसकी सहायता करूँगा। पंडे-पुजारियों को पैसे देता हूँ, पत्थर के देवता पर चढ़ावे चढ़ाता हूँ, फिर हाड़-मांस के इस पुतले को कैसे भुला दूँ? मेरे जैसे भावुकों की भावना पर डकैती डालने के लिए, जिन लोगों ने स्थान स्थान पर मठ-मन्दिर और मूर्तियाँ स्थापित की हैं। पाखंडी वे हैं, बाबा तो ···।

तभी सहसा मेरा ध्यान भंग हो गया। देखा—बाबा मेरे सामने वाली बेंच पर आ बैठा है और एक बीडी सुलगाने का प्रयत्न कर रहा है। मैंने यन्त्रवत् उससे पूछ लिया, "बाबा, कहाँ रहते हो?"

बाबा ने बिना किसी झिझक के कहा, "मुरादाबाद जिले में जमना पाड़ा गाँव है।"

"बड़ी दूर है, कैसे जाओगे?"

"अजी, दूर क्या है? बस, हरिद्वार पहुँच जाऊँ, समझ लो, घर पहुँच गया। वहाँ मेरा भाई है।"

"सगा भाई?"

"अजी गाँव का है, पर, तुम जानो जी, परदेश में गाँव का भाई सगा भाई है। फिर वहाँ बेटी है, बहन है। दिको बेटी के यहाँ क्या जाऊँगा, पर बहन के तो जा सकता हूँ। और दिकोजी। मैं तो धोखे में आ गया। आती बेर कोटद्वार से आया। हरिद्वार से आता तो रुपये लेकर आता···।"

मैं न टोकता तो बाबा रुकने वाला नहीं था। मैंने अनुभव किया कि बाबा को किसी बात की भी चिन्ता नही थी। वह १६५ मील दूर हरिद्वार जाने की बात ऐसे कह रहा था जैसे हवाई जहाज से जाना हो। मैंने टोक-कर पूछा, "बाबा, घर पर कौन है ?"

बाबा हँसा। बोला, "सब हैं। दिको बाबूजी, बात यह हुई। अब तुमसे क्या छिपाना ? उसने मना किया था और बेटे ने भी। एक बेटा है सोलह साल का।"

"क्या करता है ?"

"दो लड़कियाँ हैं, अपने घर की हैं।"

एक अट्टहास उठा। बाबा ने मेरा प्रश्न नही समझा। मैंने उसे फिर दोहराया। बाबा बोला, "बाबूजी, घर पर एक भैंस है, दो गायें हैं। आपकी दया से एक ब्यामन है। उसे क्या डर है ? बस जी, उन्होंने बहुत मना किया। उनकी मरजी में आता तो रुपये देते, पर मैंने भी कैलाश जाने की ठान ली। सो चल पड़ा। कह आया—भागवान, तेरा बस एक कम्बल लिये जा रहा हूँ।"

उसने बीडी का कश खींचा और एक क्षण रुककर कहा, "और दिको बाबूजी। बात तो उन्होंने भी ठीक ही कही थी। अगले महीने धेवती की शादी है। अब तुम जानो, भात दे लो या दर्शन कर लो। पर तुम जानो मुझे भी धुन थी। चल पड़ा।"

"तो क्या अभी कैलाश जाओगे ?"

"अजी, चला तो कैलाश के लिए था, पर किसी ने रास्ता नही बताया। नेपाल पहुँच जाता तो बाबूजी ! कैलाश भी पहुँच जाता। दिको बाबूजी तुम्हें बताऊँ। मैंने प्रेमसागर में पढ़ा था कि कैलाश में शिवजी रहे हैं। बस, तभी उनके दर्शनों की ठान ली। मैंने सोचा, कैलाश भी द्वारका की तरह बसा होगा। बाबूजी, मैं द्वारका हो आया हूँ।"

कहते-कहते वह गर्व से भर उठा। बोला, "बाबूजी ! द्वारकापुरी के चारों तरफ पानी ही पानी है, ऐसा पानी कि मुँह में दो ला जानो नमक भर गया। पर वही द्वारका की भूमि में कुएँ हैं, उनका पानी मीठा है। उसकी माया का पार नहीं, बाबूजी।"

मैं कुछ कहूँ उससे पहले ही वह फिर हँसा, "पर अच्छा हुआ, यहाँ आ गया। बादल बनते देख लिए।"

"अच्छा।"

"हाँ जी, बस पहाड़ों में से धुआँ-सा उठता है और बादल बन जाते हैं। बड़ा अच्छा हुआ। भगवान के दर्शन हो गए। उसकी माया देख ली। अब तो चला ही जाऊँगा। और न भी जाऊँ तो क्या है।"

मैंने सहसा कहा, "जाओगे कैसे, ऐसे ही माँगते-खाते?"

वह तनिक भी अप्रतिभ नहीं हुआ। उसी सरल स्वाभाविक विश्वास से बोला, "दिखो बाबूजी! भूख लगती है तो सब माँगते हैं। प्रेमसागर में मैंने पढ़ा है कि गाय चराते-चराते एक बार श्रीकृष्णजी को बड़ी भूख लगी। तब उन्होंने श्रीदामा को उस वन में यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के पास भिक्षा माँगने भेजा था।"

और फिर उसने उसी मस्ती में वह सारी कथा मुझे सुना दी, जिसमें ब्राह्मणों ने तो भिक्षा नहीं दी थी, पर उनकी पत्नियों ने दी थी। सुनकर मुझे ऐसा लगा कि यह बाबा मुझसे कुछ माँगे, तो मैं भी इसे दूँ।

पर इससे पहले कि मैं कुछ कहूँ, वह फिर बोल उठा, "पर दिखो बाबूजी! भख एक दिन की हो या तीन दिन की, आदमी खाता उतना ही है जितना उसका पेट हो।"

मुझे एक झटका लगा। मैंने दृष्टि उठाकर उसे देखा। वह अपनी भोली हँसी हँस रहा था। कह रहा था, "ज्यादा कोई खा ही नहीं सके। जो खावे वह पाप करे। तुम जानो श्रीकृष्ण कोई भिखारी थोड़े थे, भगवान थे। उन्हें भी भूख लगी और उन्होंने भोजन माँगा, और कुछ नहीं माँगा।"

फिर एक झटका लगा। घृणा धुली, श्रद्धा ने आदर को जन्म दिया। मेरा हाथ जो जेब से रुपये निकालने को बढ़ा था, एकाएक रुक गया। यह सब एक क्षण में ही हो गया। दूसरे क्षण बाबा ने बीड़ी का अन्तिम कश खींचा और लकड़ी उठाई। बोला, "अच्छा बाबूजी चलता हूँ। दिखो, दर्शन तो हो ही गए। अब मर भी गया, तो कोई बात नहीं। पहुँच गया, तो फिर किसी दिन कैलाश को चल दूँगा।"

और वह चल पड़ा। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। वह उस दुर्गम पर्वत

मार्ग पर एक-एक कदम रखता हुआ आगे और आगे बढ़ रहा था। आस-पास के सभी व्यक्ति न जाने क्यों हँसना भूल गए थे। उसके उठते ही मैं भी उठा। दो कदम चला। चाहा पुकारूँ, "ओ बाबा ! तुम्हें बहुत दूर जाना है, लो एक रुपया तो लेते जाओ। दो-चार दिन की छुट्टी मिलेगी।"

पर तभी मेरी दृष्टि उसकी दूर होती हुई लड़खड़ाती आकृति पर पड़ी। फिर सामने के गगनचुम्बी पर्वत-शृंग को देखा। सहसा लगा—बाबा, उस शृंग के ऊपर होकर बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ रहा है। मैंने आँखें मलीं, पर वह आकृति उसी तरह आगे बढ़ती चली गई। उसकी दृढ़ता ने मेरी दया-भावना को झकझोर दिया। उसके सरल पर अमित विश्वास के सामने गर्वोन्मत्त पर्वत और अभिमानिनी सरिताएँ नितान्त हेय जान पड़ीं। मुझे उस क्षण लगा—उसे कुछ देने का विचार करना उसे छोटा करने की स्पर्धा करना है। नहीं, नहीं। मैं उसे क्या दे सकता हूँ ? मुझे तो उलटे उस महान के विश्वास के एक अंश की आवश्यकता है कि जिसके सहारे मैं इन अलंघनीय घाटियों को हँसते-हँसते पार कर जाऊँ। अगस्त्य के पास, पाण्डवों के पास, स्काट के पास, कुक, लिवगस्टन और कोलम्बस के पास यही विश्वास तो था।

तब मैंने हाथ जोड़कर मन ही मन उस महान् को प्रणाम किया और चुपचाप अपने स्थान पर लौट आया।

एक शान्त ज्वालामुखी

आखिर काल कोठरी के द्वार खुले और उसमें से २८ सेर वजन की जंजीरों में जकड़ा, धुंधियाना, लड़खड़ाता एक विद्रोही बाहर आया। उसने अपने चार साथियों को इस दस फुट लम्बी, छह फुट चौड़ी और पाँच फुट ऊँची कोठरी में तिल-तिल कर मौत के विकराल जबड़ों में पिसते देखा था। तपेदिक से पीड़ित उसके अंतिम साथी ने तीन वर्ष तक जो भयंकर यंत्रणा भोगी थी उसका वह सक्रिय साक्षी रहा था। इस तरह बिताये थे उसने बीस लम्बे यातना-भरे वर्ष वहाँ···

लेकिन वह जीवित रहा और इसलिए अब मुक्त है।

कौन है वह लौह पुरुष?

उनका नाम है खड्गमानसिंह। उनके पुरखे नेपाल नरेश की सेवा में रहे हैं। मन्त्री तक के पद पर काम किया है उन्होंने। लेकिन जब राणाओं ने सत्ता हथिया ली तो वे सामूहिक हत्याकांड से तो, किसी तरह बच गये पर, उनकी सारी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई। इसी स्थिति में सन् १९८० में खड्गमानसिंह का जन्म हुआ। और अभी वह नौ वर्ष के भी नहीं हुए थे कि उनके माता-पिता दोनों स्वर्ग सिधार गये।

इस छोटी-सी अबोध आयु में उन्हें जीने के लिए घोर संघर्ष करना पड़ा। वह बहुत शीघ्र समझ गये कि राणा लोग वास्तविक शासक नहीं हैं बल्कि प्रजा शोषक हैं। उन्होंने महाराज को दरबार में बन्दी बना रखा है जिससे वे प्रजा के सम्पर्क में न आ सकें। विद्रोह का यह पहला अंकुर फूटा उनके अन्तर में। वह पढ़ना चाहते थे पर पूरे नेपाल में तब एक ही स्कूल था। वे जीवनयापन के लिए काम करते करते पढ़ना चाहते थे। काश कोई रात्रि स्कूल होता वहाँ···

तभी सुना कि भारत में यह सुविधा है। सन् १९२४ में वह भारत

आये। सयोग से उन्हें यहाँ दिन मे पढने की सुविधा मिल गयी। उस समय तक यहाँ गाधी जी के असहयोग आन्दोलन का प्रथम दौर समाप्त हो चुका था पर उससे आजादी की तडप और तेज हो उठी थी।

खड्गमानसिंह भी उस तडप से अछूत न रह सके। अपने साथियो से गाधी जी और आन्दोलन की रोमाचक कहानी सुनते हुए उन्होने अनुभव किया कि देश और समाज के लिए मनुष्य को कोई भी काम करने को तैयार रहना चाहिए, जन सेवा म लगे हुए व्यक्तियों को अपना काम स्वय करना चाहिए तथा देश के लिए छोटा-सा काम करना भी गौरव की बात समझनी चाहिए।

तभी जनवरी, १९२७ में गाधी जी बेतिया पधारे। खड्गमानसिंह लोगो के साथ स्टेशन पर उनका स्वागत करने पहुँचे। फिर दोनो दिन उनका भाषण सुना। उन्होंने लिखा है, "उस वक्त मुझ पर अहिंसात्मक विचार का रग कितना चढ़ा कह नही सकता, परन्तु मैं उनसे इतना प्रभावित हुआ कि मैंने प्रतिज्ञा की—मैं भी अपने देश मे जागृति लाने का प्रयत्न करूँगा। सफल हो गया तो जनता के लिए जनता का शासन स्थापित हो जाएगा। न हो सका तो जनता की श्रद्धा का पात्र बनकर शहीद हो जाऊँगा।

"फिर सन् १९२८ मे जब मैं मुजफ्फरपुर मे पढ रहा था प० जवाहरलाल नेहरू वहाँ आये। मैं उनका भाषण सुनने पहुँचा। कितना उद्वेलित हुआ मैं उनका भाषण सुनकर। वे कर बन्दी आन्दोलन के सम्बन्ध मे तूफानी दौरा कर रहे थे। मैंने देखा, गाधी जी के बाद पडित जी ही सबसे अधिक लोकप्रिय नेता हैं।"

उन्होंने मौलाना मोहम्मद अली का जोशीला भाषण सुना। और अब भारत मे न रह सके। अपने देश लौट गये। उन्होंने कुछ साथियो के साथ मिलकर 'प्रचड गोरखा' नाम की पहली राजनीतिक सस्था की स्थापना की और विद्रोह का बिगुल फूंक दिया। किन्तु शीघ्र ही महाराज से मिलने का प्रयत्न करते हुए वे बन्दी बना लिये गये। उन्हें निर्दयतापूर्वक पीटा गया और अन्त मे आजन्म कारावास का दण्ड देकर चारो साथियों के साथ, एक ब्लैकहोल जैसी काल कोठरी मे ठूँस दिया गया। वे किसी से मिल नही

सकते थे। रामायण और गीता के अतिरिक्त कुछ पढ़ नहीं सकते थे। बस एक-दूसरे की साँसें गिन सकते थे।

उन्हें याद है कि न जाने कैसे लुका-छिपा कर इन्हीं दिनों एक सज्जन ने इन्हें स्वामी विवेकानन्द की एक पुस्तक पढ़ने को दी। उन्होंने लिखा है कि उसे पढ़ने के बाद धार्मिक भेदभाव की रही सही धारणा भी मेरे मन से गायब हो गयी।

लेकिन उस यातना-भरे जीवन का अभी अन्त नहीं आया था। वह आया बीस वर्ष बाद सन १९५१ में, जब महाराज त्रिभुवन ने भारत की सहायता से राणाओं के शासन का अन्त कर दिया। तभी वे उस अँधेरी काल कोठरी से बाहर आ सके। बन्द होते समय वे पाँच थे और मुक्त होते समय अकेले···

इन्हीं दिनों अचानक भारत में उनसे मेरी भेंट हो गयी। मैं अपने मित्र यशपाल जी के साथ हटूंडी (अजमेर) के महिला शिक्षा सदन के वार्षिक समारोह में भाग लेने जा रहा था। देखता हूँ कि पूरी बर्थ पर किन्हीं सज्जन का सामान फैला पड़ा है। उसी में है एक विचित्र टोपी, तुर्की और गांधी टोपी का अजीब सम्मिश्रण··

हम उसकी समीक्षा कर ही रहे थे कि तभी गौरवर्ण, सुगठित देहयष्टि और मध्यम कद के एक सौम्य भद्र पुरुष अन्दर आये। मैंने अचकचा कर उनकी ओर देखा और पूछा, "आपका शुभ परिचय ?"

वे बोले मुस्करा कर, स्नेह पगे स्वर में, "मेरा नाम खड्गमानसिंह है। मैं नेपाल के मन्त्रिमंडल का एक सदस्य हूँ ··।"

उसके बाद अपरिचय की धुन्ध ऐसी मिटी कि बातों का अन्त ही नहीं आ रहा था। मैं चकित ही नहीं श्रद्धानत भी था उस क्रांतिकारी के प्रति जो बीस वर्ष तक उस भयानक काल कोठरी में रहकर भी इतना शान्त, इतना सौम्य बना रहा।

लेकिन गांधी जी से प्रभावित होकर भी प्रारम्भ में उन्होंने अहिंसात्मक आन्दोलन का मार्ग नहीं अपनाया था। बम प्रहार द्वारा राणाओं का संहार करने का निश्चय किया था। उन्होंने बताया कि अहिंसात्मक आन्दोलन पर मैंने गम्भीरता से तब सोचा जब जेल में 'अनासक्ति योग' पढ़ने का

अवसर मिला। आज तो मेरा दृढ विश्वास है कि गाधी जी द्वारा प्रतिपादित सत्य और अहिंसा की नीति को आचरण मे उतार कर ही व्यक्ति समाज और विश्व का सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है।

तीन दिन तक हम निरन्तर साथ रहे। उनकी भोली-भाली बातें सुन कर हम कभी-कभी विनोद भी कर बैठते थे पर उनकी सौम्य मुद्रा मे रच-मात्र भी अन्तर न पडता।

लेकिन एक दिन पड गया। पुष्कर मे उनका परिचय पाकर जब पुजारियो ने स्वभाववश राणाओ का प्रशस्ति गान शुरू कर दिया तब उनकी भृकुटि तन गयी। हुकार उठे, "मेरे सामने राणाओं का नाम मत लो।" और पुजारियो की प्रतिक्रिया देखे बिना वे द्रुतगति से आगे बढ गये। पुजारी हतप्रभ थे और हम प्रसन्न। आखिर उनके भीतर के क्रान्तिकारी को देख सके थे हम।

दिल्ली मे वह अपनी भतीजी के साथ मेरे गरीबखाने पर पधारे थे। भोजन भी किया था। उसकी याद करके, मेरी पत्नी की मृत्यु का समाचार पाकर, उन्होंने लिखा था, "बहिन जी का दर्शन मुझे भी मिला था और उनके हाथो बना खाना भी आपके यहाँ खाया था किन्तु क्षण-भर-सी उस भेंट मे बहिन जी की महानता को मैं समझ न पाया।"

उसके बाद नेपाल की राजनीति मे बहुत उतार-चढाव आये। अनेक कारणो से काग्रेस का मन्त्रिमण्डल देर तक कायम न रह सका। १६ अक्तूबर, १९५२ के पत्र मे उन्होने लिखा—

"....भगवान की इच्छा से, हमारे देश प्रेम से, तथा भारत की सहायता से हमें एकतन्त्र शासन उखाड फेंकने तथा प्रजातन्त्र का श्रीगणेश करने का सुअवसर मिला। श्री महाराजाधिराज बहुत ही उदार व्यक्ति है। उन्होंने तो काग्रेसी नेताओ को शासन-भार सौंपा था लेकिन अफसोस वे सँभाल न सके। उलटे वे लोग अधिकारलोलुपता के दल-दल मे बेतरह फँस गये और फलस्वरूप मन्त्रिमण्डल भग हो गया। शासन भार ग्रहण करने योग्य दूसरी राजनीतिक सस्था है नहीं। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने के कारण श्री ५ को वर्तमान परामर्शदात्री मण्डल की सहायता से राज करना पडा। तो भी श्री ५ हम लोगो की सलाह लेकर वैधानिक तौर पर ही कार्य करते

यह भी क्या संयोग ही नहीं था कि जब सस्ता साहित्य मंडल के दल के साथ मुझे नेपाल जाने का अवसर मिला तब वे वहाँ नहीं थे। उनकी पत्नी थीं। जितनी कर्मठ, उतनी ही स्नेहिल और अतिथि परायणा। भोजन के अवसर पर उनके आग्रह का पार न था। कितना स्नेह दिया उन्होंने हमें। मैंने अनुभव किया कि ऐसी पत्नी का वियोग उसके पति को गहरे दर्द से भर दे यह सहज-स्वाभाविक है। वैसे खड्गमानसिंह जी का पूरा जीवन दर्द की मूर्तिमान तस्वीर है। उसी दर्द ने उनके कवि को गहराई दी है। पत्नी की मृत्यु पर उन्होंने लिखा था—

दियो छैन किन्तु छ ज्योति
ननिभ्ने यो मनमा दिने भक्ति शक्ति
एकत्व को पथ मा म बढ़दै रहन्छु
दियो पाई शाश्वत म शान्ति लिनेछु

दिया तो नहीं है किन्तु ज्योति है अब भी जो बुझती नहीं, देती है भक्ति शक्ति, एकत्व के पथ पर मैं बढ़ता रहूँगा, पाकर दिया शाश्वत शान्ति मैं लूँगा।

उनका कविता संग्रह 'सौगात' मनुष्य में उनकी आस्था, देश के प्रति उनकी ममता और अपने कर्त्तव्य के प्रति गहरी समझ का प्रमाण है। शहीदों के स्मृति चित्र भी उन्होंने लिखे हैं, 'शहीदहरु को सम्झना'। और 'जेल में बीस वर्ष', यह पुस्तक तो अत्याचार और आतंक का जीवन्त दस्तावेज है। जब वह पाकिस्तान में राजदूत थे तब उन्होंने उर्दू में भी कुछ नज़्में लिखी थीं। पाक-नेपाल मैत्री संघ ने उन्हें प्रकाशित भी किया था।

यह सच है कि उनका दलगत प्रजातंत्र में विश्वास नहीं रह गया है क्योंकि उसका विकृत रूप वह देख चुके हैं पर प्रजा के लिए जीने और मरने में उनकी पूरी आस्था है। वास्तव में उनकी आस्था मनुष्य में है। उन्होंने लिखा है कि 'यदि हम अपने साथी मनुष्य को, जिसे हम देख सकते हैं, छू सकते हैं, बात कर सकते हैं उसी मनुष्य को प्यार नहीं कर सकते तो उस सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान प्रभु को कैसे कर सकते हैं जिसे हम अपनी आँखों से देख तक नहीं सकते। प्रभु के प्रति प्रेम का पहला पाठ यही है कि हम उसकी सर्वोत्तम कृति मनुष्य को प्यार करें।'

अपनी जीवन सध्या मे जब वह ७७वें वर्ष मे चल रहे हैं उन्होंने रवि ठाकुर के इस मन को साध लिया है कि जो अकेला चलता है वही शक्तिशाली है। उनका एक बेटा है जो व्यापार मे लगा हुआ है। इसलिए पास रहकर भी सिद्धान्तत दूर है। इसीलिए तो १६ सितम्बर, १९८३ के पत्र मे उन्होंने लिखा था, "...अपने राम 'एकला चलो' वाले बने हुए हैं। उसकी रजा यही है तो मैं भी इसी मे राजी हूँ...।"

कविवर रहीम की यह बात शायद उन्होंने गाँठ बांध ली है—

रहिमन निज मन की बिथा मन ही राखो गोय।
सुनि हँस अैहैं लोग सब बाँट न लैहे कोय॥

जो जीना चाहता है उसके लिए मात्र यही राह शेष है। इसी राह के राही हैं खड्गमानसिंह जो जो सागर के विपरीत ऊपर से शान्त पर अन्तर में बेचैन हैं। अन्तर की बेचैनी ही तो कुछ करने को विवश करती है।

एक विद्वान प्रिंस से भेंट

थाई भारत कल्चरल लॉज के श्री रघुनाथ शर्मा के सौजन्य से, बैंकाक से चलने के एक दिन पूर्व, हमें थाईलैण्ड के एक और विद्वान प्रिंस धानी निवात से भी मिलने का अवसर मिल गया। विद्वान होने के अतिरिक्त वह थाईलैण्ड के महाराज के चाचा तथा प्रिवी कौंसिल, स्यामी सोसायटी और नेशनल कौंसिल ऑफ म्युजियम के अध्यक्ष भी हैं। उनके पास समय बहुत थोड़ा था, इसलिए हमने नियत समय से कुछ पहले पहुँचने का निश्चय किया। मेरे साथ प० रघुनाथ शर्मा तथा 'जीवन साहित्य' के सम्पादक और मेरे सहयात्री श्री यशपाल जैन भी थे। साढे चार बजे के स्थान पर हम लोग ठीक सवा चार बजे उनके विस्तृत प्रागण वाले बँगले पर पहुँच गये। प्रागण जितना विस्तृत था, उस तक पहुँचने का मार्ग उतना ही सकीर्ण।

बँगले म प्रवेश करते ही हमारी भेंट उनकी बहन से हुई। भगवान बुद्ध की ढाई हजारवी जयन्ती के अवसर पर वह भारत पधारी थी। तब बौद्ध तीर्थों के अतिरिक्त जयपुर, आगरा, अजन्ता, एलौरा आदि सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान उन्होंने देख थे। अजन्ता एलोरा की कला स वह जितनी प्रभावित हुई उतनी ताजमहल के सौंदर्य से नहीं। उन्होंने बताया, "ताजमहल को देख कर मैं यह तो नही कह सकती कि निराश हुई, लेकिन जितना सुना था उतना सौंदर्य नही देख पायी। शायद इसका कारण यह था कि उसके बारे मे बहुत कुछ सुन चुकी थी। अति परिचय भी रस को खण्डित कर देता है।"

फिर सहसा बोलीं, 'लेकिन एक बात मेरी समझ मे नही आती और मुझे यह अच्छा भी नही लगा कि अपनी जिस पत्नी को शाहजहाँ इतना प्यार करता था, उसी ने बच्चो ने पिता के साथ कैसा बर्ताव किया।"

मैंने कहा, "इसका उत्तर आपको पारिवारिक वातावरण म नही

मिलेगा। मिलेगा उनकी सामाजिक व्यवस्था मे। मुस्लिम समाज मे हिन्दू समाज-व्यवस्था की तरह उत्तराधिकार की प्रथा नही है। वहाँ पिता के बाद बडा पुत्र स्वत ही गद्दी पर नही बैठ जाता। जो शक्तिशाली है वही राज्य करता है। अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ, सभी ने ऐसा किया था।"

यशपाल बोले, "इसके अतिरिक्त ताज के सौन्दर्य को यदि आप समझना चाहते हैं, तो उसे इतिहास म अलग करके कला की दृष्टि से देखना होगा।"

वह बोली, "यह तो ठीक है। मैं यह भी नही कहती कि ताज अच्छा नहीं है। उस जैसी इमारतें हैं कहाँ? लेकिन···"

ठीक इसी समय सामने के जीने मे प्रिंस यानी निवात उतरते हुए दिखाई दिए। घडी मे ठीक साढे चार बजे थे। मैंने देखा कि आयु काफी होने पर भी उनके चेहरे पर स्नेहमयी सरलता और सौम्यता अकित है। देखकर मन मे उत्फुल्लता जागती है। उन्होने घुटनो तक की दो लाँग की रंगीन धोती और बन्द गले का सफेद कोट पहना है। पैर नगे हैं। ललाट प्रशस्त है। **

नीचे पहुँचते ही उन्होंने उत्फुल्ल होकर नमस्कार किया। फिर हाथ मिलाया और परिचय के अनन्तर बोले, "मुझे बहुत खेद है कि मैंने आपको राह दिखवाई।"

उनकी बहन ने कहा, 'य लोग तभी स कह रह है कि हम जल्दी आ गये हैं। बार-बार क्षमा माँग रह है।"

हमने कहा, "सचमुच ही जल्दी आ गए हैं। पाँच बजे आपका दूसरा कार्यक्रम है न? सोचा था कि जरा पहले मिल सकें, तो कुछ अधिक बातें कर लेंगे।"

प्रिंस मुस्कराए। पूछा, "यहाँ आप कब आये थे?"

"एक सप्ताह पूर्व बर्मा से आये थे। वहाँ एक सम्मेलन मे भाग लेना था। एक महीना वहाँ रह। कल कम्बोदिया जा रहे है।"

'ओ हा, तो आप लोग जा रहे हैं? यह बर्मा का सम्मेलन कैसा था? इसका उद्देश्य क्या था?"

यशपाल जी ने सम्मेलन के उद्देश्यो पर सक्षेप मे प्रकाश डालते हुए

बताया, कि वर्मा मे कैसे हिन्दी का प्रचार और प्रसार हो यही सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य है।

प्रिन्स बोले, "जी हाँ, वर्मा मे भारतीय सस्कृति का प्रभाव अधिक है।"

मैंने कहा, "जी नही, हमें तो थाईलैण्ड मे अधिक दिखाई देता है। थाई भाषा मे सस्कृत भाषा का बाहुल्य है। नमस्कार की पद्धति तथा अनेक सस्कार इस बात का प्रमाण हैं।"

प्रिन्स मुस्कराकर बोले, "सच! आपको ऐसा लगता है?"

जैसा कि हर जगह होता था, यशपाल जी ने आदान-प्रदान की चर्चा चलाई। कहा, "भारत और थाईलैण्ड पडोसी देश हैं, दोनों मे पुराने सम्बन्ध रहे हैं। लेकिन आज इन देशो मे साहित्यिक आदान-प्रदान नही के बराबर है। यही हालत वर्मा की भी है। हम चाहते हैं कि थाई भाषा की उत्तम कृतियाँ भारत को मिलें और भारत की थाई को।"

प्रिन्स ने उत्तर दिया, "मैं आपसे सहमत हूँ। पर प्रश्न यह है कि इस काम को करे कौन?"

यशपाल बोले, " 'थाई भारत लॉज' कर सकता है। उसके सम्पर्क बड़े व्यापक हैं।"

प्रिन्स ने कहा, "हाँ हाँ, पण्डित जी बहुत काम कर रहे हैं।"

यह कहते हुए उन्होंने पण्डित जी की ओर देखा और पण्डित जी ने कृतज्ञ भाव से हाथ जोडकर कहा, "मैं क्या करता हूँ। करने वाले तो आप ही हैं।"

प्रिन्स फिर बोले, "लेकिन इस काम को वही व्यक्ति कर सकता है, जो थाई अग्रेजी और हिन्दी, इन तीन भाषाओ मे पारगत हो। ऐसा एक युवक था करुणाकर। पण्डित जी उसको जानते हैं। दुर्भाग्य, वह राजनीति के चक्कर मे पड गया।'

फिर कूटनीतिक हँसी हँसकर बोले, "क्या करें, मुझसे मिलते हुए भी लजाता है। इस समय तो शायद वह जेल मे है।"

इस चर्चा के साथ-साथ रामायण की बात आ निकली, जो स्वाभाविक ही थी। मैंने पूछा, "आपने 'स्टोरी ऑफ ड्रामा इन स्याम' यह पुस्तक लिखी है न?"

प्रिन्स बोले, "जी नहीं, पुस्तक तो नही लिखी, लेकिन इसी शीर्षक से एक निबन्ध अवश्य लिखा है। बर्मा मे एक सम्मेलन हुआ था, उसी के लिए। पता नही उन्होंने उसका क्या किया। मैंने उसे छपे हुए नही देखा। सुनता हूँ वे लोग अब उसे अपने जरनल मे छाप रहे है। यदि नही छापेंगे तो अनुमति लेकर मैं स्वय छपवाऊँगा।"

मैंने कहा, "रामायण का इस देश मे बहुत प्रचार है। मन्दिरो मे अनेकानेक चित्र अकित हुए हैं।"

प्रिन्स बोले, "यह तो ठीक है लेकिन रामायण के इधर कई संस्करण प्रचलित हैं। थाई-भारत कल्चरल लॉज के सस्थापक श्री स्वामी सत्यानन्द पुरी ने थाई रामायण का अग्रेजी मे अनुवाद किया है, परन्तु खेद है कि उन्हे प्रामाणिक सस्करण नही मिल सका।"

"प्रामाणिक सस्करण आप कौन-सा मानते हैं?"

"सन् १७६६ मे राजाराम प्रथम के समय जो सस्करण छपा था वही प्रामाणिक है। परन्तु वह सम्पूर्ण नही है।"

मैंने पूछा, "आप किस रामायण को प्रामाणिक मानते हैं?"

"वाल्मीकि रामायण को।"

"मेरा मतलब थाईलैण्ड मे।"

"उसी १७६६ वाले सस्करण को।"

मैंने कहा, "क्या आप यह अनुभव नही करते कि कोई आप जैसा विद्वान इधर के देशो मे प्रचलित सभी रामायणो का अध्ययन करे, जैसे हमारे देश मे राजाजी ने किया है। उन्होंने वाल्मीकि के आधार पर रामायण की कथा लिखी है, लेकिन तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से तुलसी और कम्बन के उद्धरण भी दिये हैं।

प्रिन्स बोले, "मैंने यह पुस्तक नहीं देखी। क्या वह अग्रेजी मे उपलब्ध है? नागपुर मे मिल जाएगी?"

"बम्बई मे मिल सकती है।"

प्रिन्स ने पूछा, "राजाजी अब कहाँ हैं? क्या करते हैं? लार्ड माउण्टबेटन के बाद वही तो गवर्नर-जनरल थे।"

मैंने कहा, "अब वह कांग्रेस मे नहीं हैं। नई पार्टी बना कर नेहरू जी

का विरोध कर रहे हैं।"

यशपाल तुरन्त बोले, "नेहरू जी के प्रति उनके मन में बड़ा स्नेह है, लेकिन राजनीति के क्षेत्र में...।"

बात काट कर सहसा प्रिन्स बोले, "सो दिस इज़ पोलिटिक्स।"

और वह मुस्कराने लगे, वही अर्थगर्भित मुस्कान। राजनीति से हट कर मैंने फिर पूछा, "अच्छा, आपके देश में साहित्य की क्या स्थिति है? विशेषकर नाटक की।"

प्रिन्स बोले, "हाँ, नाटक तो हैं, पर...।"

यशपाल बोल उठे, "थाई जीवन पर आधारित नाटक और उपन्यास तैयार होने चाहिए, जिनमें दूसरे देश के पाठक भी रुचि ले सकें।"

और उन्होंने मेघाणी जी के उपन्यास 'प्रभु पधारे' का उल्लेख किया। यह बर्मी जीवन पर लिखा गया है। सुन कर प्रिन्स सहसा, पण्डित जी की ओर मुड़े। बोले, "यह तो बहुत अच्छा विचार है।"

नाटक की चर्चा पर फिर आते हुए मैंने पूछा, "क्या स्यामी नाटक के विकास पर कोई पुस्तक है?"

प्रिन्स बोले, "हाँ, 'क्लासीकल स्यामी थियेटर' नाम की एक बड़ी पुस्तक है। और यूँ एक छोटी सी पुस्तक मैंने भी लिखी है।"

इन्टरव्यू चल ही रहा था कि सहसा घड़ी पर दृष्टि गयी। साढ़े पाँच बज रहे थे। हठात हम लोग उठ खड़े हुए। चलने से पूर्व यशपाल जी ने एक चित्र लेने की अनुमति चाही। प्रिन्स तुरन्त तैयार हो गये। हम लोग बँगले के अन्दर से होकर दूसरी ओर पहुँचे, जहाँ प्रकाश की व्यवस्था ठीक थी। चित्र लेने के बाद उन्होंने हमारे पते लिखे और कहा कि दिल्ली आना हुआ तो वे हमें सूचना देंगे। फिर पते पर सस्ता साहित्य मण्डल का नाम देख कर पूछा, "आपके यहाँ तो साहित्य अकादमी भी है। मण्डल और उसके काम में क्या अन्तर है?"

यशपाल बोले, "मण्डल एक चैरिटेबल ट्रस्ट है। उसका उद्देश्य उत्तम साहित्य को सस्ते मूल्य पर निकालना है। पिछले ३५ वर्ष से यह गांधी, नेहरू विनोबा तथा राजा जी आदि का साहित्य प्रकाशित करता आ रहा है। यह केवल हिन्दी का ही काम करता है। इसके विपरीत

अकादमी एक अर्द्ध सरकारी संस्था है। उसके उद्देश्य भिन्न और व्यापक हैं।"

बातें करते-करते हम लोग फिर ड्राइंग रूम में पहुँच गये। वहाँ पर नालन्दा का एक सुन्दर माडल रखा हुआ था। प्रिन्स ने बताया कि वे नालन्दा और वैशाली हो आये हैं। वैशाली में अच्छा काम हो रहा है।

जब यशपालजी ने बताया कि वहाँ डाक्टर हीरालाल जैन काम की देखभाल करते हैं तो प्रिन्स ने उनके सम्बन्ध में अनेक प्रश्न पूछे। मैं बराबर यह अनुभव कर रहा था कि प्रिन्स हर बात की गहराई में जाने और पूरा ज्ञान प्राप्त करने को उत्सुक और आतुर दिखाई देते हैं। वे बाहर तक हमारे साथ आये। तभी उनकी दृष्टि यशपाल जी की धोती पर पड़ी। प्रसन्न होकर बोले, "देखिए, मेरी धोती भी आपकी जैसी ही है।"

मैंने कहा, "सुना है, थाईलैण्ड में पहले सभी लोग इसी तरह की धोती पहनते थे।"

वे एकाएक गम्भीर हो उठे। बोले, "जी हाँ, पहनते थे। परन्तु न जाने क्यों हमारे भूतपूर्व प्रधान मन्त्री को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने धोती को असभ्य ठहरा कर इसका पहना जाना वर्जित करार दे दिया।"

हम लोग बाहर आ चुके थे। समय भी बहुत हो चुका था। बड़े प्रेम से एक-दूसरे को नमस्कार किया और कृतज्ञता प्रकट करने के बाद हम लौट चले। आधे घण्टे के लिए आये थे और लगभग दो घण्टे के बाद लौट रहे थे। क्या प्रोटोकोल में बँधे इस विद्वान प्रिन्स की सरलता और सौजन्य का यही एक तथ्य प्रमाण नहीं है।

एशियाई संस्कृति के दूत

जिम समय मैं विधान-गृह पहुँचा तो बारह बज चुके थे और मार्च की धूप में गरमी पैदा हो गयी थी। यम से उतर कर देखा, सामने बरामदे में भीड़ लगी है। अनेक युवक-युवतियाँ बड़ी तत्परता से कार्य में व्यस्त हैं पर व्यस्त होकर भी व प्रसन्न और उत्साहित हैं। मैं आगे बढ़ा, तभी कई बरमी और चीनी पास से निकल गये। फिर कई मगोल जाति की नारियाँ आईं और आये सुन्दर गठे हुए कई पुरुष जिनका रंग सफेद था पर चेहरों पर जलन के दाग नहीं थे। उसी समय मेरे बड़े भाई ने मुझे देखा। वे पाण्डीचेरी अरविन्द-आश्रम के डा० इन्द्रसेन के साथ वहीं काम कर रहे थे। मेरे पास आकर उन्होंने कहा, "उधर देखो वे तिब्बत के प्रतिनिधि हैं।"

अचरज से मैं बोला,, "सब औरतें हैं।"

"नहीं पुरुष।"

कौतूहल और भी बढ़ा। मैंने देखा—व भारी डील-डौल के लम्बे-लम्बे व्यक्ति मस्ती से लड़खड़ाते हुए हमारी ओर चले आ रहे थे जैसे पहाड़ों पर चलते-चलते उन्हें समतल भूमि पर चलना कठिन मालूम हो रहा है। वे चमकदार लाल-पीले रंग के रेशम के लम्बे चोगे पहिने थे। और केशों की माँग भारतीय महिलाओं की तरह नाक की सीध में निकाली थी। फिर दो गुँथी हुई वेणियों की सहायता से सिर पर बीचों-बीच अपना धर्मचिह्न नीलम धारण कर रखा था। और कानों में एक ओर होल्डर की तरह लम्बा और पतला आभूषण पहिना था।

तो ये सब पुरुष हैं।

एक स्त्री है।

यह जो सुन्दर और युवती है।

हाँ यही। यह इस लम्बे और गोरे तिब्बती की, जो अनुवादक है, पत्नी है। युवती गोरी थी और सुकुमार थी। उसने भी लम्बा चोगा पहिना था पर वह हल्का और बाँह-रहित था। कमर में बैल्ट थी और केश दो वेणियों में होकर पीठ पर लहरा रहे थे। उसके पैरों में ऊँची एड़ी की सैण्डिल थीं और आँखों में कौतूहल-भरी मुस्कराहट···।

ये थे तांत्रिक लामाओं के प्रतिनिधि जिनका देश आज भी विदेशियों के लिए बन्द है। भाषा की कठिनता के कारण हम उनसे विशेष बातें न कर सके। अंग्रेजी भी वे हमारी तरह नहीं जानते थे। पर वे बड़े दिलचस्प और आकर्षक व्यक्ति थे। उन्हें ल्हासा से दिल्ली पहुँचने में बाईस दिन लगे थे और पोनी से लेकर वायुयान तक में उन्होंने सफर किया था। क्या यह उनकी दुनिया के सम्पर्क में आने की भावना को प्रकट नहीं करता। यद्यपि मैंने देखा उन पर नये युग का प्रभाव था—उन्होंने चोगों के नीचे पतलून पहिनी थी और पैरों में बूट थे फिर भी मुझे लगा—आज की दुनिया तक पहुँचने के लिए उनके विचारों को कितनी दूर चलना पड़ेगा।

तब एक बज चुका था और पास ही भोजन-घर में भीड़ बढ़ने लगी थी। विभिन्न देशों के व्यक्तियों को एक ही साथ एक ही प्रकार भोजन करते देख कर मन में उठा—सभ्यता के ये भेद कितने अर्थहीन हैं? उनमें अधिकांश थे जिन्हें मैं भारतीयों से अलग नहीं कर सकता था।

तिब्बत, वर्मा तथा कुछ चीन, हिन्द एशिया, मलाया, नेपाल तथा लंका वालों को छोड़ कर सभी ने अंग्रेजी पोशाक पहिनी थी। इसीलिए बहुतों की राष्ट्रीयता का मुझे तभी पता लगा जब मैंने उनसे बातें कीं। भाषा की दृष्टि से ये लोग अधिक राष्ट्रीय थे। बहुत-से व्यक्ति अंग्रेजी बिल्कुल नहीं जानते थे और जो जानते भी थे तो उनका ज्ञान हमारे जैसा नहीं था। यहूदी-दल के मन्त्री ने हमसे कहा था, "हम लोग आप भारतीयों की तरह अंग्रेजी भली भाँति नहीं जानते।" अफगान दल के नेता डा० अब्दुल मजीद ने तो और भी स्पष्ट शब्दों में बताया, "अंग्रेजी तो आपकी मातृभाषा है।"

भोजन-घर के सामने लौंज था। उसके विशाल मण्डप में अनेक सोफे, कुशन और कुरसियाँ सजी थीं। यहीं पर प्रतिनिधि बैठते थे और मिलने-

वाले व्यक्तियों से बातें करते तथा हस्ताक्षर देते थे, मैं जब लौंज मे पहुँचा तो वहाँ बहुत कम लोग थे और वे भी सब भारतीय। तभी सामने के द्वार से एक और व्यक्ति अन्दर आया। उसके कन्धे कुछ कुछ आगे की ओर झुक रहे थे, मस्तक प्रशस्त था और रग गेहुँवे से अधिक गोरा। उन्होंने बगल मे कुछ किताबें दबाई थी। मैंने समझा कि ये भी कोई भारतीय हैं। वे हमारे पास आये और अखबार उठाने लगे। भाई साहब को कुछ शका हुई। पूछा, "आप···।"

तुरन्त जवाब मिला, "मैं अफगानिस्तान से आया हूँ।"

"आपका शुभ नाम, महोदय ?"

"हुकमचन्द।"

"हमे खुशी हुई · हुकमचन्द, अफगानिस्तान···" भाई साहब ने कहा, "क्या आप कृपाकर पाँच मिनिट दे सकेंगे ?"

"हाँ, हाँ, क्यो नही।" उन्होने कहा और हम लोग वहीं सोफे पर बैठ गये।

बातो बातो मे मैंने पूछा, 'आप हिन्दू हैं ?"

"जी हाँ।"

"पर आपका नाम। अजीब हिज्जे है Hokam Tschand···।"

उन्होंने बताया, "बात यह है कि मैंने पहिले-पहल बर्लिन मे रोमन अक्षर सीखे थे इसलिए जर्मनी परिपाटी के अनुसार हस्ताक्षर करने लगा।"

' अफगानिस्तान म हिन्दुओ की कैसी दशा है ?"

"ठीक है। हम लोग पूरी तरह स्वतन्त्र है।"

"मुसलमान मदान्ध तो नही है ? वे आपको सताते तो नही ?"

वे दृढ़ता से बोले, 'नही वे बिलकुल मदान्ध नही हैं। वे अपने धर्म पर दृढ हैं पर इसका अर्थ दूसरो पर जुल्म करना नही है। वहाँ पर हम बहुत थोडी सख्या म हैं। व यदि जालिम होते तो हमे कभी का नष्ट कर चुके होते।"

भाई साहब न कहा, ' पर आपका देश अभी भी बहुत पिछड़ा हुआ है।"

"हाँ, सो तो है। हम लोग गरीब हैं। प्रगति के लिए हमारे पास पूंजी

नहीं है !" क्षण-भर रुककर उन्होंने फिर कहा, "और अफगान विदेशी पूंजी लगवाना पसन्द नहीं करते क्योंकि आप जानते हैं विदेशी पूंजी का अर्थ है विदेशी प्रभुत्व।"

उनकी बात सच थी मगर प्रगति के लिए पूंजी नहीं है, इसी कारण देश कब तक पिछड़ा रह सकता है ? इस प्रश्न का समाधान उनके नेता से बातें करते हुए हुआ। काबुल विश्वविद्यालय के रेक्टर डॉ० अब्दुलमजीद अपने पद के अनुरूप प्रभावशाली थे। यद्यपि उनका कद छोटा था परन्तु शरीर की गठन और वाणी की दृढ़ता उनकी इस कमी को (यदि वह कमी है) पूरा करती थी। उनका चेहरा लम्बा, पर दृढ़ था। जब हम उनसे मिले तो वे लौंज में खड़े थे। अभिवादन और परिचय के बाद हमारे एक साथी आचार्य ऋषिरामजी ने उनसे पूछा, "आपके देश में सामाजिक सुधार की क्या अवस्था है ?"

उन्होंने उलट कर प्रश्न किया, "सामाजिक सुधार से आपका क्या मतलब है ?"

आचार्य ने बताया, "जिस प्रकार अमानुल्लाने···।"

वाक्य पूरा होते-होते दृढ़ता से और शीघ्रता से बोले, "उसे सामाजिक सुधार नहीं सामाजिक पतन कहिए।"

सुन कर हम चौंके पर डाक्टर उसी दृढ़ता से बोलते रहे। उन्होंने एक हाथ से अपना कोट पकड़ा और कहा, "क्या आप समझते हैं इस कोट को बदलने से मेरा सुधार हो सकता है।"

हम उनका आशय समझे। मैंने कहा, "आप ठीक कहते हैं। पोशाक तो बाहरी चिह्न है। उसे बदलने से सामाजिक सुधार नहीं हो सकता।"

"हाँ," उन्होंने अपनी बात पूरी करते हुए कहा, "सामाजिक सुधार के लिए शिक्षा की आवश्यकता है और इसके लिए वे बच्चे थे (He was too *young for social reform*)।"

फिर उन्होंने अपने देश की शिक्षा की प्रगति बताई और भारत के साथ अपने देश के सम्बन्धों की चर्चा करते हुए कहा, "भारत और अफगानिस्तान का सांस्कृतिक सम्बन्ध प्रागैतिहासिक युग से है। दोनों देश एक-दूसरे के ऋणी हैं।"

इसी बीच मैंने पूछा, "आपके देश में कौन-सी विदेशी भाषा अधिक प्रचलित है?"

वे बोले, "जर्मन, फ्रेंच और इंगलिश तीनों बराबर प्रचलित हैं।"

और फिर मेरी ओर देख कर कहा, "पर आपके देश में जैसे इंगलिश है ऐसी नहीं। आपकी तो यह मातृभाषा है। हमारी मातृभाषाएँ पश्तो और पख्तून हैं।"

संस्कृति के सम्बन्ध में सबसे अधिक बातें हुईं थीं मुहम्मद अली खाँ कोहज़ाद से। वे इतिहास के विद्वान् और काबुल म्यूजियम के डायरेक्टर हैं। वे तनिक लम्बे और पतले व्यक्ति हैं और यह जानते हैं कि कब उन्हें कठोर हो जाना चाहिए। भाई साहब ने जब उन्हें 'अरविन्द संदेश' की एक प्रति भेंट की तो सिगरेट का लम्बा कश खींचते हुए उन्होंने कुछ रुखाई से कहा, 'मैं योग के बारे में कुछ नहीं जानता। क्या यह मेरे मतलब की चीज़ है? मुझे समझाइये।"

हमने कहा, "आप विद्वान् व्यक्ति हैं। आपके कई लेख हमने पढ़े हैं।"

वे मुस्कराये, "मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ परन्तु मुझे पुराने इतिहास से प्रेम है। क्या आपने "आजकल' पढ़ा है?"

भाई साहब ने उत्तर दिया, "हाँ, 'आजकल' पढ़ा है, और 'अफगानिस्तान' भी।" वे फिर मुस्कराए और बात श्री अरविन्द को लेकर भारतीय योग पर चल पड़ी। भाई साहब ने उन्हें विस्तृत रूप से योग के अर्थ और इतिहास के सम्बन्ध में बताया। वे बीच-बीच में प्रश्न करते थे और व्याख्या भी। सच तो यह है वे सब कुछ समझते थे। जब हमने उन्हें बताया कि श्री अरविन्द के योग में अपने को पहिचानने पर विशेष जोर दिया जाता है तो उन्होंने सिगरेट की राख झाड़ते हुए हमें देखा और धीरे से पर गम्भीरता से कहा, "अपने को पहिचानना! उसके बाद रह ही क्या जाता है। अपने अन्दर ही तो परमात्मा रहता है।"

उन्हें इस बात का बड़ा दुःख था कि लोग सांस्कृतिक सम्बन्धों का नारा तो लगाते हैं परन्तु उन्हें पहिचानने की कोशिश नहीं करते। फिर मेरी ओर देखकर उन्होंने धीरे से पूछा, "क्या आपने अन्तर एशियायी नुमायश देखी है?"

"जी।"

"अफगानिस्तान विभाग देखा है?"

'जी।"

"उसमें, युद्ध तथा सूर्य की देवी आदि मूर्तियां देखी हैं?"

मेरे 'हां' करने पर उन्होंने कहा, "मैं उन्हें बड़े परिश्रम से लाया हूँ परन्तु भारत में कहीं भी उनकी चर्चा नहीं हुई। आपके पत्रों में राजनीतिक द्वन्द्व और मामूली झगड़ों के किस्से भरे रहते हैं पर उन सम्बन्धों की रत्ती-भर चर्चा नहीं होती जो विभिन्न देशों को एक धागे में बाँधे हुए हैं।"

वे बहुत गलत नहीं थे। हमने उन्हें यह गलती सुधारने का आश्वासन दिया और प्रार्थना की कि 'आप हमें इस सम्बन्ध में लेख भेजिए। हम उन्हें छपवाएँगे। हम आपको भेजेंगे, आप उन्हें छापिए। आपका हमारा तो सदा का सम्बन्ध है।' उन्होंने सिगरेट का कश खींचा और कहा, "अफगा-निस्तान से सभ्यता का उदय हुआ है। आपके देश की सभ्यता और संस्कृति हमारे देश की ऋणी है।" हमने मुस्कराकर कहा, "हम आपका ऋण चुकाएँगे।"

और फिर साहित्यिक संस्थाओं का पता लेकर हम आगे बढ़ गये। ईरान वाले अलग होटल में ठहरे थे इस कारण अधिक बातें न कर सके। उनके नेता डॉ० गुलाम हुसैन सदीगी लम्बे और प्रशस्त ललाट युक्त प्रभावशाली व्यक्ति थे। उन लोगों का रंग हम लोगों से बहुत गोरा था परन्तु अंग्रेजों की तरह धब्बों से पूर्ण नहीं था। मैंने जब ईरानी साहित्य पर चर्चा करते हुए उनसे कुछ लोगों के पते पूछे तो उनके एक साथी जरा तीव्रता से बोले, "आप यह क्यों जानना चाहते हैं?"

मैंने कहा, 'मैं एक लेखक हूँ और चाहता हूँ आपके देश के लेखकों से सम्बन्ध बनाऊँ।" तब उन्होंने मुझे कई नाम बताये और कहा, "हमारे शिक्षा विभाग के प्रकाशन के डायरेक्टर को लिखिए। वे आपको सब सूचनाएँ देंगे।"

डॉ० सदीगी सम्मेलन में आये हुए प्रतिनिधियों में सब से सुन्दर बोलते थे। ऐसा लगता था जैसे कविता पढ़ रहे हों। फारसी मधुर भाषा है पर मधुर भाषा को बोलने वाले का कण्ठ भी मधुर होता है तो अमृत बरसने

सगता है। डॉ० सदीमी ने दिल्ली की जनता को दो बार वही अमृत पिलाया। ईरान की हास्यमुखी राजकुमारी शफियाह फिरोज अपने सौन्दर्य और उससे भी बढ़कर अपने हैट के कारण सम्मेलन के लिए एक आकर्षण थी। इसी तरह मिस्र की दोना कुमारियाँ—कुमारी इदरिस और कुमारी करीमा अली सईद—बड़ी प्रभावशालिनी थी। वे सुन्दर परन्तु बहुत चपल और मिलिटैण्ट नारियाँ थी।

कुमारी करीमा तो डॉ० बर्गमैन को जवाब देने के कारण प्रसिद्ध हो चुकी थी। जिन्हें केवल हिन्दुस्तान के मुसलमानो का परिचय था वे उन्हें किसी भी रूप म मुसलमान मानने को तैयार नही हो सके, न वेश भूषा, न रूप-रग, न आचार-व्यवहार म। वे पूर्णतया पश्चिम के रग मे रँगी हुई थी। इसके विपरीत उनके नेता अरब लीग के मुस्तफा मोमिन पक्के मुसलमान मालूम होते थे। वे लाल फेज कैप लगाते थे और उन्होंने छोटी दाढ़ी रखी हुई थी। उनकी आँखो मे एसा कुछ था जो उनकी चतुरता को प्रगट करता था। वे बड़ी आसानी स बात बचा जाते थे। शायद यह जरूरी था क्योकि उनको लेकर हमारे प्रस म काफी विरोध उठ खड़ा हुआ था। हमसे बातें करत हुए उन्होने बताया, ' मैं हिन्दू धर्म के बारे म बहुत कुछ जानना चाहता हूँ क्योकि मैं मिस्र लौटकर 'भारत का भविष्य' नामक पुस्तक लिखूंगा।"

तब वे लौंज म एक कोच पर बैठे थे और बहुत लोग उनस बात करन को उत्सुक थे। अपने हाथ के कागज मुझ देकर वे आटोग्राफ देन लग। मैंने देखा—लेख अग्रेजी मे है और अक्षर पढ़े जाने योग्य हैं। शीर्षक था 'नील की घाटी की एकता'। एकता के उनके तर्क मैं उत्सुकता से पढने लगा कि वे फिर हमारी ओर मुड़े, "हाँ तो क्या आप मुझ कुछ कितावें दिला सकेंगे ?"

"हाँ, हाँ," भाई साहब बोले, "मैं आपको कल ही दो किताबें ला दूंगा। और अगले दिन जब हम एक पुस्तक (Hinduism at a Glance) लेकर उनके पास गए तो वे भोजन घर म बैठे क्रीम सलाद खा रहे थे। पुस्तक देखकर बहुत खुश हुए, बाले, "इसकी क्या कीमत है ?"

भाई साहब ने अर्थ-भरे शब्दों मे कहा, "महोदय। भारत बहुत गरीब

देश है।"

उन्होंने ऊपर देखा और मुस्कराकर बोले, "भारत अपने अतिथियो का सत्कार करना जानता है।"

आगे की बात कृतज्ञ हँसी मे डूब गयी पर चलते समय उन्होंने कहा, "अब जो किताबें मुझे भेजें उनकी कीमत वसूल करना मत भूलिए।" उन्होंने बताया, वे अभी भारत मे घूमेंगे। इन लोगो के प्रतिद्वन्द्वी यहूदी दल के नेता डॉ० बर्गमैन वृद्ध, विनम्र और मिलनसार व्यक्ति थे। उनका मस्तक प्रशस्त था, उनके नेत्रो मे विद्वत्ता और स्नेह था। वे धार्मिक पुरुष थे। उनका दिन अधिक से अधिक व्यक्तियो से मिलने की टोह मे रहता था, विशेष कर वृद्ध डॉ० इम्मेन्युल ओलवेंजर तथा नवयुवक मन्त्री याकोव शिमोनी। डॉ० इम्मेन्युल तो सिर पर रूमाल बाँधे अक्सर लौंज मे ही देखे जाते थे। वे संस्कृत जानते थे और भारतीय साहित्यिको के एट होम मे उन्होंने 'तत्वम् असि' की सुन्दर व्याख्या की थी परन्तु सबसे बढकर थे डॉ० बर्गमैन। सारे प्रतिनिधियो मे वे ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें भारत के प्राचीन ज्ञान और वैभव से प्रेम था। उनका ज्ञान सम्पूर्ण था। वे हिब्रू विश्वविद्यालय मे दर्शन के अध्यापक हैं। उन्होंने ही उसके पुस्तकालय को मध्य एशिया का सबसे बडा पुस्तकालय बना दिया था। उनसे अनक बार विभिन्न विषयो पर बातें हुई। वे हमारी सभा मे अपने साहित्य पर 'टाक' देने को प्रस्तुत थे पर करफ्यू के कारण ऐसा न हो सका। उन्होंने हम लेख भेजने की प्रतिज्ञा की और हमसे भी कहा, 'आप अपने साहित्य पर एक गवेषणापूर्ण लेख मुझे भेजिए। मैं पुरातन धार्मिक वृत्तियो को पुनर्जीवित करना चाहता हूँ।"

सुन कर हमे अचरज हुआ। हमारे साहित्य की अवस्था भी ठीक ऐसी है। यद्यपि हम आधुनिक धारा के समर्थक थे तो भी हम डॉ० बर्गमैन की सचाई और सभ्यता से प्रभावित हुए। हम लगा हम अपने ही देश के किसी वृद्ध सज्जन से विचार-विनिमय कर रहे हैं। अन्तर केवल इतना था कि उन बातो मे अपनाव का कडवापन नही आया था।

सोवियत एशिया के पाँच प्रजातत्रो अर्मीनिया, जार्जिया, अजरबैजान, उजबेकिस्तान तथा ताजिकिस्तान के प्रतिनिधि जनता म सबसे अधिक

लोकप्रिय थे। वे प्राय सभी अंग्रेजी से अपरिचित थे तो भी कई प्रतिनिधि टूटी-फूटी अंग्रेजी में ही अपना भाव व्यक्त करने की कोशिश करते थे। यद्यपि वे प्राय सभी पश्चिमी ढंग के कपड़े पहिनते थे परन्तु सादगी उनका विशेष गुण था। व्यवहार म भी वे प्राय उतने ही निश्छल थे। आर्मीनिया के प्रतिनिधि के भाषण का उल्था करते हुए उनकी अनुवादिका ने कई बार रुक कर वक्ता से उनका आशय समझा। जनता वाली बोटने लगी पर वह निहायत सौम्यता से अनुवाद करती रही। उसके मुख पर जो बालोचित सरलता थी वह बड़ी आकर्षक थी। उसमे न अहम् था न चपलता। उसी प्रकार ताजिकिस्तान की नेत्री मादाम तैरोवा थी। उनके बाल रूखे थे, उनकी वेशभूषा साधारण थी पर उनका व्यवहार नम्र और आडम्बरहीन था। कृतज्ञता प्रगट करते हुए जब व पूर्वीय परम्परा के अनुसार झुकते थे तो उनकी मुद्रा बड़ी भव्य, बड़ी प्यारी लगती थी। वह अब भी मेरी आँखो मे घूम रही है। सौभाग्य से जार्जिया के प्रतिनिधि प्रो० आयलेशियानी से बातें करते समय पाडीचेरी आश्रम के डॉ० इन्द्रसन, जो सांस्कृतिक ग्रुप के सदस्य भी थे, हमारे साथ थे। वे जर्मन जानते थे और उन्होंने प्रोफेसर से जर्मन भाषा मे बहुत देर तक योग पर बातें की। प्रोफेसर सस्कृत जानते हैं और 'शकुन्तला' का जार्जियन मे अनुवाद कर रहे हैं। उसके बाद 'महाभारत' का अनुवाद करेंगे। वे मिलनसार और खुले दिल के व्यक्ति थे। सस्कृत की शुद्धता पर उनका ध्यान हमसे कही अधिक था। हमने श्री को अग्रेजी मे जब इस प्रकार Sri लिखा तो वे न समझ सके। जब हमने उन्हे समझाया तो वे व्यग्य से मुस्कराए और फुर्ती से उन्होंने काटकर लिखा Shri। हम मन-ही मन लजा उठे। जार्जिया के सम्बन्ध मे बातें करते-करते वे एक बार खुल कर हंसे। बोले, "श्रीमती सरोजिनी नायडू मुझ से कह रही थी कि पुराने हिन्दुस्तानी जार्जिया मे वहाँ से सुन्दरी नारियाँ लेने के लिए जाया करते थे। और वे ठीक कह रही थी। हमारा देश है ही सुन्दर नर-नारियो का देश। फ्रेंच कोश मे तो जार्जिया का अर्थ लिखा है—सुन्दर नर-नारियों का देश।'

फिर क्षण-भर रुक कर कहा, "प० नेहरू का रूप रग ठीक हम जार्जिया वाला जैसा है। वे जार्जियन हैं।"

मैंने सोचा, पण्डितजी जो इतने अन्तर्राष्ट्रीय हैं उसका शायद यही कारण है। जन्म से वे भारतीय हैं, शिक्षा में नाते अंग्रेज तथा रूप-रंग में जार्जियन और उस दिन उजबेक प्रतिनिधि ने उन्हें अपनी पोशाक पहिनाकर उजबेक बना दिया था।

सम्मेलन के सभी प्रतिनिधियों में हमें चीन के प्रतिनिधि सबसे अधिक चंचल और फुर्तीले लगे। उनकी आँखों में हँसी थी जो शरारत से पूर्ण थी, शरारत वह जो बच्चों में होती है यानी नटखट। जब देखो इधर से उधर कूदते फेरते हुए। वे अधिकतर अंग्रेजी पोशाक पहिनते थे। एक चीनी नारी तो परियों की तरह फैशनेबल पोशाक पहने थी। वह सबसे आकर्षक थी। कुछ लोग अपनी राष्ट्रीय पोशाक भी पहने थे परन्तु विदेशी विभाग के अधिकारी कभी भारतीय लम्बा कोट पहिन आते तो कभी गांधी टोपी लगा आते। वह उन्हें खूब फबती थी। वस्तुतः वे लोग सबसे अधिक अपनाव की भावना प्रगट कर रहे थे। उन लोगों से हमारी सबसे अधिक बातें हुईं—प्रो० तानयुन शान से जो शान्ति निकेतन में चीना-भवन के डायरेक्टर हैं। उन सबके विरोध में वे परम सौम्य और शान्त जान पड़े। भाई साहब उनसे शान्तिनिकेतन में मिल चुके थे, इसीलिए हमारी बातें संस्कृति और योग से आगे नहीं बढ़ीं।

बाहिरी मंगोलिया वालों से रूसी अनुवादक द्वारा बातें हुईं। वे अंग्रेजी पोशाक में थे पर अंग्रेजी भाषा बिलकुल नहीं जानते थे। भारत के सम्बन्ध में उन्होंने काफी दिलचस्पी दिखाई और बताया, उनकी भाषा में विशेष साहित्य नहीं है तथा उनकी भाषा और लिपि का चीनी भाषा और लिपि से कोई सम्बन्ध नहीं है।

नेपाल वालों से बातें करते हुए हम भूल बैठे कि वे भारतीय हैं। बातों ही बातों में जब हमने कहा, "आपने चित्तरंजनदास का नाम सुना होगा। वे बंगाल ···।"

बात काट कर सरदार नरेन्द्रमणि दीक्षित ने कहा, "क्या आप समझते हैं हम बाहिरी मंगोलिया से आए हैं।" यह करारा तमाचा था। उसकी चोट हमने कृतज्ञ होकर सही। इसी बात को ले० कर्नल सग नरसिंह राना ने और भी दृढ़ता से कहा, 'हम भारतीय हैं और हमें भारतीय होने का

गर्व है।" वे लोग हिन्दू थे, हिन्दी जानते थे। उन्होंने भारत में शिक्षा पायी थी। वे अपनी काली टोपी, कमीज से ऊपर रहने वाले कोट और तंग पाजामे में मनमुग्ध वीर पुरुष लगते थे। ईरानी प्रतिनिधि को छोड़ कर इनके नेता श्री विजय शमशेर जंगबहादुर राना सबसे सुन्दर और प्रभावशाली वक्ता थे। उनकी अपनी भाषा लगभग शुद्ध संस्कृतमयी हिन्दी थी तथा अंग्रेजी पर उनका असाधारण अधिकार था। श्री चन्द्र कालेज के प्रिन्सिपल सरदार रुद्रराज पाण्डे तथा प्रो० रत्न बहादुर दीक्षित से बातें करने पर पता लगा कि उनका साहित्य यद्यपि विशेष उन्नत नहीं है तो भी यथेष्ट जाग्रत है। कई समितियाँ काम कर रही हैं और कई पत्र निकलते हैं। हमें लगा जैसे-जैसे राजनीतिक जागृति होगी वैसे-वैसे उनका साहित्य भी उन्नति करेगा।

भूटान की भाषा यद्यपि तिब्बत से प्रभावित है परन्तु सभ्यता की दृष्टि से वह भारतीय हिन्दू है। साहित्य लगभग शून्य है। देश के दो निरीक्षक आये थे। महाराज की बहिन विदेशी प्रभाव में थीं। उनके पुत्र श्री डोरजी कभी-कभी राष्ट्रीय पोशाक में भी आते थे और सुन्दर लगते थे। वे सुदृढ़ और गतिशील जान पड़े। वे हिन्दी जानते थे और बोलते थे।

बरमा अभी तक भारत का अंग था। बर्मी दल के नेता जस्टिम क्वामिण्ट भारतीय धारा सभा के सदस्य थे। वे ठिगन, फुर्तीले और हँसमुख व्यक्ति थे और न जाने कितनी बार उन्होंने कहा, "मैं तो आधा भारतीय हूँ।" परन्तु उन्होंने दूसरी बार कहा, "इस बार भारत में मैं एक परिवर्तन देख रहा हूँ। लोग आजादी को आते देख रहे हैं और उसके स्वागत को उत्सुक हैं।"

उनके दल में कई साहित्यिक व्यक्ति थे। रंगून विश्वविद्यालय के पुस्तकाध्यक्ष तथा कवि उथीन हान से हम कई बार मिले। वे संस्कृत जानते थे और भारतीय साहित्य के बारे में अधिक से अधिक जानने को आतुर थे। उन्होंने बताया कि उनका साहित्य न श्रेष्ठता में और न सम्पन्नता में गर्व करने योग्य है। उसका सारा आधार जातक कथाएँ हैं।

मैंने पूछा, "क्या आपके यहाँ प्रगतिवाद नहीं है?"

उन्होंने कहा, "है तो पर वह कम्युनिस्टों से प्रभावित है। वे भी

काफी परिमाण में साहित्य पैदा करते हैं। न जाने उन्हें पैसा कहाँ से मिलता है।"

वे शिकायत नहीं कर रहे थे परन्तु फिर भी मुझे लगा हर कहीं यही प्रश्न सबके सामने क्यों आता है। क्या प्रगति के डर से ? आगे चलकर उन्होंने एक बात और बताई कि विश्वविद्यालय के लोग अपने को अधिक चतुर और योग्य मानते हैं और दुःख यह है कि अक्सर साहित्यिक लोग भी इस भाव के शिकार हो जाते हैं। उन्होंने कहा, "साहित्यिक होने के लिए विश्वविद्यालय की शिक्षा अनावश्यक है।" वे ठीक कह रहे थे। इसी प्रकार सम्मेलन के विषय में उन्होंने बताया, "भारत ने हमें बीज दिए हैं। हमें चाहिए अब हम उन्हें अपने-अपने देश में जाकर बो दें जिससे आगे चलकर सुन्दर और सुदृढ़ वृक्ष पैदा हों।" लेकिन आगे चलकर उन्होंने यह डर प्रगट किया कि एशिया के देश पाँच ग्रूपों में बँटते जा रहे हैं। चीन और भारत स्वयं दो ग्रूप हैं। तीसरा ग्रूप सोवियत प्रजातन्त्रों का है, चौथा अरब लीगवाला ग्रूप और पाँचवें ग्रूप में दक्षिण-पूर्व के देश हैं। उन्होंने कहा, "संस्कृति की दृष्टि से यह बँटवारा तभी तक ठीक है जब तक एकता का धागा दृढ़ होता है। हमें लगा कि उनके अनुभव में शक्ति है। वर्मी लोग वैसे शान्त, रिजर्व और विनम्र प्रतीत हुए। प्रायः सभी लोग राष्ट्रीय पोशाक पहिनते थे। वर्मा में भारतीयों की अवस्था पर बातें चलने पर उन्होंने विस्तार से बताया था, "जो विरोध आज दिखाई देता है वह स्थायी नहीं है। आजादी प्राप्त हो जाने पर वह नहीं टिकेगा।"

मलाया प्रतिनिधि दल के नेता डा० बुरहानुद्दीन ने अपने भाषण में कहा, "विभिन्न देशों की नदियाँ भारत महासागर में आ मिली हैं।" यह बात बहुत लोकप्रिय हुई। इनके साथ हिन्दू, मुसलमान, लकावासी तथा चीनी सभी आए थे। इन सब में सबसे अधिक आकर्षक थे ब्रह्मचारी कैलाशम। लम्बे, शान्त और गम्भीर सफेद लम्बे कुरते और सफेद दुपल्ली टोपी में वे अपने साधु जीवन के अनुरूप लगते थे। वे मलाया में भारतीय दल के प्राण हैं। बातें करते हुए कहने लगे, "मुझे शिक्षा, समाज, राजनीति सभी प्रश्नों को देखना पड़ता है। बहुत व्यस्त रहता हूँ। हाथ बँटाने को आदमी नहीं मिलते। तब कैसे लिखूँ।" मैंने कहा, "आदमियों से आपका

मतलब भारतीयों में है ?"

"हाँ।"

तब भाई साहब ने कहा, "जिस प्रकार दक्षिण अफ्रीका से गांधीजी भारतीय कार्यकर्ताओं को लेने आए थे, क्या उसी प्रकार आप भी ले जाना चाहते हैं ?" मुसकराकर उन्होंने उत्तर दिया, "कोशिश तो कर रहा हूँ।"

उन लोगों पर आजाद हिन्द फौज का प्रभाव काफी गहरा था। उन्होंने बताया, "हम भारतीय लोग अभिवादन आदि के अवसर पर सदा जयहिन्द का प्रयोग करते हैं।"

स्याम प्रतिनिधि दल के नेता फाया अनुमान एकान्तप्रिय थे। अचानक बरामदे में बात होने पर उन्होंने कहा, "यहाँ शोर रहता है, मुझे शोर पसन्द नहीं है।" परन्तु बातें होने पर उन्होंने बताया, "आप से अधिक हम आपकी संस्कृति के रक्षक हैं। हम अब भी अभिवादन के समय हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं। स्वस्तिका का प्रयोग करते हैं। विवाह की रीति भिन्न है, परन्तु मण्डप उसी तरह बनाते हैं।" फिर बोले, "हमारी भाषा भी संस्कृति से प्रभावित है। मेरा नाम मूल में संस्कृत नाम है 'अनुमान राजधन' इसका स्यामी उच्चारण 'अनुमान रचथोन' है।"

वस्तुतः ये भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे। इन्होंने पुराने कथा-साहित्य का अनुवाद किया है तथा भारत-स्याम संस्कृति के सम्बन्ध के लिए थाई—भारत लॉज में बहुत काम किया है। ये ललित कला विभाग के डायरेक्टर-जनरल हैं। इसी दल की कुमारी चोले कचम गोप स्वामी सत्यानन्द की शिष्या हैं और हिन्दी-संस्कृत जानती हैं।

सम्मेलन में नये प्रजातन्त्र हिन्द-एशिया का दल सबसे बड़ा था। ये लोग यद्यपि नाटे थे, परन्तु चतुर, स्फूर्ति से पूर्ण और प्रभावशाली थे। उनमें कुछ लोग बिलकुल बात नहीं करते थे, परन्तु कुछ थे जो हर समय बातें करते देखे जाते थे। इनमें सबसे अधिक लोकप्रिय थे बूढ़े, नाटे और पतले काजी सलीम। उनकी दाढ़ी और टोपी उनके मुसलमान होने की साक्षी थी। वे विदेशी मामलों के विभाग के वाइस प्रेसीडेण्ट थे। इसीलिए हँसमुख और वाक्पटु थे। रक्षा विभाग के मन्त्री मोटे थे और बातें नहीं करते थे। सूचना-विभाग एक नारी के हाथ में था जो सुन्दर, विनम्र और बातें करने में

ातुर थी। उनके नेता डा० अबुहनीफा मुसलिम दल के नेता थे। वे भी राजनीति पर बातें करने से घबराते थे। वैसे वे हँसमुख और स्पष्ट व्यक्ति थे। वे सम्मेलन के भविष्य के बारे आशावादी थे और अपने देश के बारे मे भी। मैंने कहा, "अभी अभी डच सरकार से आपका जो समझौता हुआ है, वह आपके लम्बे मार्ग की पहली सफलता है।"

वे मुसकराए, "हाँ यह है।"

फिर न जाने कैसे मेरे मुँह से निकल गया, "आप संघ शासन क्यों नहीं चाहते।" इस पर उन्होंने तेजी से मेरी ओर देखा और तीव्रता से उसी तरह मुसकराते हुए कहा, "आपके देश को यदि दस हिस्सों मे बाँट दिया जावे तो क्या आप उसे पसन्द करेंगे। हम भी नहीं करते और न करेंगे।"

कहते-कहते उनकी आँखें चमक उठीं। मैं उनसे बहस करना चाहता था पर सहसा वे उठे, हाथ मिलाया और क्षमा माँगकर चले गए। कहा, "आई दोन्त ट्रस्ट प्रेस (I dont trust press)।" मैं कुछ देर समझ भी नहीं सका। समझा तो मुझे हँसी आ गई। ये ही डा० हनीफा कई दिन पहिले हमारे लिए बड़ी तत्परता से अपने देश के लेखकों की लिस्ट बना रहे थे। बीच म सिगरेट का कश खींचकर बोले, "मैं भी तो लेखक हूँ। ड्राम लिखता हूँ।"

'तो अपना नाम लिख दीजिए।"

और उन्होंने अपना नाम भी लिख दिया। लका प्रतिनिधि मण्डल के किसी सदस्य को मैं नहीं पहिचान सका। वे मुझे दक्षिण भारतीयों से अलग नहीं लगे। श्री विक्रम सिंह, जो सरकारी प्रतिनिधि तो नहीं थे, परन्तु वैसे दल में मन्त्री थे, लका के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने अंग्रेजी मे कई पुस्तकें लिखी हैं जो काफी लोकप्रिय हैं।

वे बोले, 'हमारे यहाँ शिक्षा अधिक है, इसीलिए साहित्य कम नहीं है। लेखकों की आर्थिक स्थिति भी अच्छी है, क्योंकि पुस्तक का प्रथम सस्करण काफी छपता है।"

फिर उन्होंने बताया, "वैसे लका में आपको विदेशी प्रभाव बहुत मिलेगा। यहाँ तक कि लोग अभी तक अपने नामों मे विदेशी नाम जोड़ते हैं। हमारे प्रसिद्ध लेखक का नाम मार्टिन विक्रम सिंह है।"

मैंने अचरज से कहा, "हम तो ऐसे लोगों को ईसाई समझते रहे।"

और सब कुछ देख-सुनकर हमें लगा कि संस्कृति का वह सूत्र जिसने हमें अनजाने बाँध रखा था, आज भी कमजोर नहीं पड़ा है। सामी, मंगोल, द्राविड और आर्य जाति के अलग-अलग रूप रंग के व्यक्ति, अलग-अलग भाषा बोलने वाले, सभी अपनत्व की गहरी भावना से ओत प्रोत थे। सभी एशिया के विशाल कुटुम्ब में अपने-अपने स्थान पर दृढ़ रहकर एक-दूसरे को सहारा देने को आतुर थे। वे पश्चिम में डूबते हुए सूर्य को आशा भरे नेत्रों से देख रहे थे, क्योंकि वही सूर्य पूर्व में अपनी लालिमा फेंक रहा था। अलग होकर भी वे एक थे, क्योंकि उनकी छाती में एक जैसा हृदय धड़कता था। उनके मस्तिष्क में एक जैसी विचारशृंखला घूम रही थी। वे सुख की टोह में कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने को आतुर थे। यह मिलन तभी सफल हो सकता है जब हम विभिन्नता को विरोध समझने की पुरानी गलती न दोहरावें तथा गांधीजी के शब्दों में बदले की भावना के स्थान पर समझदारी से काम लें।

सबके साथ, सबसे दूर

स्वस्थ शरीर, लम्बा कद, श्वेत केश, गौर वर्ण, खद्दर के लम्बे कुर्ते और चूड़ीदार से मंडित पंडित रघुनाथ शर्मा उन व्यक्तियों में से हैं जो प्रथम और अन्तिम दर्शन में एक जैसा प्रभाव छोड़ते हैं। सौम्य, शान्त और सहज मुस्कान से आलोकित उनके नयन अजनबी से सदा यही कहते जान पड़ते हैं, 'अब कोई डर नहीं, आप अपने घर में आ गये हैं।'

शर्माजी पंजाबी हैं और उनके सुदृढ़ शरीर पर आज़ाद हिन्द फौज की वर्दी हो या खद्दर की शेरवानी और चूड़ीदार—सभी पोशाकें फबती हैं। सन् १९२२ से वह थाइलैण्ड में कपड़े का व्यापार कर रहे हैं और वहाँ के भारतीयों के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन के एक सुदृढ़ स्तम्भ हैं। वह इण्डियन नेशनल कौंसिल के प्रमुख थे। आज़ाद हिन्द फौज की थाई शाखा के अर्थमन्त्री थे। वह 'थाई-भारत कल्चरल लॉज' के प्राण हैं। सच तो यह है कि वह थाईलैण्ड में भारत के सच्चे सांस्कृतिक राजदूत हैं।

बैंकाक पहुँचने से पूर्व उनकी प्रशंसा सुन चुके थे। उसी के आधार पर यशपाल जी ने उनको पत्र भी लिखा। उत्तर भी आया, कुछ आश्वस्त भी हुए, परन्तु यह कल्पना करने का कोई कारण नहीं मिला था कि हम अपने ही घर जा रहे हैं। पहुँचने पर भी न कोई उद्वेग, न तूफान, पर जैसे हृदय ने हृदय को परख-पहचान लिया हो। थाईलैण्ड के लिए कुल २४ घंटे का वीसा (प्रवेश-पत्र) लेकर चले थे। बैंकाक के हवाई अड्डे पर १६ टिक्स देने पर वह तीन दिन का हो गया। पर जब शर्माजी ने सुना तो तुरन्त बोले .

"यह कैसे हो सकता है? इतनी दूर आकर ऐमरल्ड बुद्ध का मन्दिर नहीं देखेंगे! उसी को देखने के लिए तो दुनिया यहाँ आती है।"

यशपाल जी ने उत्तर दिया, "देखना तो चाहते है, पर सुना है, वह तो इतवार को ही खुलता है।"

शर्माजी ने मुस्कराकर कहा, "जी हाँ, आप तब तक रहेंगे। वीसा बढ जाएगा, चिन्ता मत कीजिए।"

वीसा कैसे बढा, क्या-क्या कठिनाइयाँ आई, उनकी चर्चा यहाँ असगत है। पर वीसा बढा और शर्माजी ने स्वय घूम-घूमकर हम दोनो को वह दुर्ग-जितना विशाल, तपोवन जैसा शात और पवित्र, किसी कलाकृति जैसा सुन्दर और वैभवशाली मन्दिर दिखाया। अन्दर जाते समय सहसा एक कर्मचारी ने रोक लिया। यशपालजी के पास कैमरा था। बोला, "कैमरा ले जाना चाहते हो तो ५ टिकल (लगभग सवा रुपया) दो।"

यशपालजी कैमरा वहीं रखकर जाने वाले थे कि शर्माजी बोल उठे, "क्या करते हो! अन्दर बडी सुन्दर चीजें हैं। वहाँ कैमरे का अभाव खटकेगा।" और उन्होने पाँच टिकल निकालकर दे दिए।

उनकी ही बात ठीक निकली। अध्यात्म और वैभव के उस समन्वय को देखकर मन का कलुष जैसे धुल पुँछ गया हो। वैभव के बीच मे शाति का अखण्ड साम्राज्य था। आर्य और बौद्ध दोनो सस्कृतियाँ जैसे वहाँ आलिंगन-बद्ध मुस्करा रही हों। तथागत के उस विश्वविख्यात मन्दिर की एक मील लम्बी प्रकोष्ठ की दीवारों पर पूरी रामायण विशाल चित्रो मे जैसे जी उठी हो। कहानी और कला, दोनों पर स्यामी प्रभाव है, पर राम और बुद्ध के अपने देश मे तो ऐसे दृश्य ही दुर्लभ है।

वह उस समन्वय की व्याख्या करते नहीं थकते थे। बाजार मे घूमते समय भी उनका ध्यान इसी समन्वय की खोज मे रहता था। सहसा रुक जाते, कहते, "यह देखो दर्जी की दूकान, इसका नाम है 'शिल्प'। वह है दूसरी दूकान, उसका नाम है 'रत्नजय' और उस तीसरी दूकान पर लिखा है 'कीरति नियम'। और उधर देखिए, वह किसानो का बैंक है, परन्तु उसका नाम है 'कृषिकर धनागार'। भारत मे इस प्रकार के नाम है क्या?"

कुछ और आगे बढे। पार्क मे सगीत का आयोजन था। उसे देखकर कहने लगे, "भारत का कितना प्रभाव है, काष्ठ तरग, बाँसुरी, करताल

और वही ढोलक मृदंग जैसे वाद्य यन्त्र, सब वही तो है, आलाप भी वही है।"

दिन में भोजन के समय उन्होंने कहा था, "हम लोग भारतीय संस्कृति के विषय में बात तो बहुत करते हैं, लेकिन उसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं, इस देश में देखिए, पश्चिम के प्रबल प्रभाव के बावजूद वह आज भी किस प्रकार सुरक्षित है। यहाँ की भाषा में ८० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। हाँ, उच्चारण थोड़ा भिन्न है। रामायण का प्रभाव तो इतना है कि यहाँ के राजा 'राम' के नाम से ही सम्बोधित होते हैं। इस समय उन्होंने थाईलैण्ड के एक राजा की सुन्दर प्रभावशाली प्रतिमा की ओर हमारा ध्यान खींचते हुए कहा, "यह राम प्रथम की मूर्ति है।"

शर्माजी स्वयं इस समन्वय के मूर्तिमान प्रतीक हैं। 'थाई-भारत कल्चरल लॉज' का उद्देश्य यही समन्वय है। इस संस्था के संस्थापक स्वामी सत्यानन्दजी महाराज उन विभूतियों में से थे, जिन्होंने भारत और थाईलैण्ड की समान संस्कृति को जैसे खोज निकाला था, जैसे दोनों को वह फिर से एक करने को आतुर हो उठे थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने इस संस्था की स्थापना की थी। परन्तु १९४२ में एक हवाई दुर्घटना में उनका देहांत हो गया। पं० रघुनाथ शर्मा उनके उसी उद्देश्य की रक्षा में प्राणपण से लगे हैं। लॉज का प्रशस्त भवन काफी सुन्दर है। नीचे विशाल हाल है, उसी में पुस्तकालय और वाचनालय है। ऊपर अतिथि-गृह है। भारत के अनेक अतिथि वहीं ठहरते हैं। हम भी वहीं ठहरे थे। वहाँ की स्यामी परिचारिका, बौद्ध भिक्षु शासनरश्मि तथा शर्माजी ने जिस प्रकार हमारी देखभाल की, वह अनुभव करने की ही वस्तु है। स्यामी परिचारिका सुबह-सवेरे ही आती, घुटने टेककर हमारे सामने बैठ जाती और धाराप्रवाह थाई भाषा में अपना भाषण शुरू कर देती। यशपालजी और मैं, दोनों एक दूसरे का मुँह देखकर हँसते तो हँसते ही रहते। वह पूछा करती थी, "नाश्ते के लिए क्या लाऊँ?" यशपालजी के बार-बार कूफे कूफे कहने पर वह यह तो समझ जाती कि हम कॉफी चाहते हैं, पर खाने के लिए क्या चाहिए यह उसकी समझ में तभी आता जब बौद्ध भिक्षु शासनरश्मि वहाँ आते।

भोजन प्राय हम शर्माजी के घर ही करते थे। लगता जैसे भारत मे ही हो—वही आत्मीयता, वही सहज स्नेह वही स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थ। शर्माजी उस दौरान मे हमें अधिक-से-अधिक जानकारी देने को आतुर हो उठते और उनकी पत्नी हिन्दू घर की एक सरल प्राणा, स्नेहमयी माँ की तरह पास आ बैठती, कहतीं, "मैं भी आपकी बातें सुनूंगी।

लेकिन सच कहता हूँ कि उन क्षणो मे हम उनसे जो कुछ सीख सके वह शायद जन्म-जन्म प्रयत्न करने पर भी न सीख पाते। एक दिन यशपालजी पूछ बैठे, "क्यो भाभीजी, यह देश कैसा लगता है?"

वह बोली, "अच्छा है, पर देश तो अपना ही होता है, अपने व्यवहार, अपने रीति-रिवाज, वे ही अच्छे लगते हैं।"

मैंने पूछा, "आप यहाँ के लोगो के घर जाती हैं?"

बोलीं, "जाती हूँ, पर छुआछूत के कारण खाना नही खाती।"

"ये लोग बुरा नहीं मानते?"

"नही, ये लोग हमारी छुआछूत का इतना विचार नही करते। पहले हमारी पडोसिन एक स्यामी महिला थी। वह मुझे चावल पकाना सिखाती थी, लेकिन उसने कभी भी हमारे चौके मे जाने का प्रयत्न नही किया। बाहर खड़े होकर ही बताती रहती थी।"

फिर हँसकर बोली, "लेकिन एक लड़की ने हमारे चावल छू लिये।"

मैं तुरन्त बोल उठा, "और आपने उन्हें फेंक दिया होगा?"

बोली, "नहीं।"

"क्यों?"

"क्योंकि लड़की बेचारी भोली थी। उसने जानबूझ कर थोड़े ही छुए थे। यही क्यो, एक दिन मैं उनके घर गई, उन्होंने तरह-तरह के अचार डाले थे, मुझे भी चखने को दिए।"

"आपने चखे?"

"हाँ चखे, मना कर ही नही सकी।"

"क्यो?"

"उन्हें बुरा लगता न।"

हम दोनो उनकी ओर देखते रह गये। शर्माजी धीरे-धीरे मुस्करा

रहे थे और मैं सोच रहा था—विकृत से विकृत मान्यता भी हृदय की तरलता को नष्ट कर सकती है। पर तरलता होनी चाहिए।

लेकिन कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। उन दिनों की बात है जब शर्माजी आजाद हिन्द फौज के एक स्तम्भ थे। अन्तिम पराजय के बाद जापानी जब बैंकाक छोड़कर जाने लगे तो एक मुसलमान लड़के को उनके पास छोड़ गये। उसे वह अराकान से पकड़ लाये थे, साथ ले जाना नहीं चाहते थे। सभी ने कहा, शर्माजी को सौंप जाओ। पर शर्माजी घर पर नहीं थे। वे फिर आये, पर तब भी वह घर नहीं थे। तब उनकी पत्नी ने कहा, "लड़के को ही छोड़ना है, तो छोड़ जाओ, कोई बात नहीं।"

उस लड़के को उन्होंने बेटे की तरह बड़े प्यार से अपने पास रखा। कई दिन बाद शर्माजी लौटे। तब पता लगा कि वह लड़का तो मुसलमान है।

वह बोलीं, "कोई बात नहीं, एक बार बेटा मान लिया तो मान लिया, अब कोई भी हो।"

उसे वह रणवीर कहकर पुकारती थी और कई वर्ष तक वह उनकी स्नेहमयी छाया में पलता रहा। एक बार उसे बहुत जोर का टाइफाइड हो गया, लेकिन अपनी अनथक सेवा से उन्होंने उसे मौत के मुँह में जाने से बचा लिया। अन्त में एक दिन वह अपने माँ-बाप के पास अराकान चला गया। कुछ दिन तक उसकी चिट्ठी आती रही। फिर जैसा कि होता है, उसका कोई समाचार नहीं मिला। बोली, "ठीक है, अपने घर चला गया, खुश होगा। भगवान करे खुश ही रहे।"

जापान की पराजय के बाद आजाद हिन्द फौज जिन भयंकर कष्टों में से गुजरी, जिस दमन-चक्र का शिकार हुई, शर्माजी भी उससे बचे नहीं रहे। उन्हें गिरफ्तार करके ऐसी जगह रखा गया जहाँ निरन्तर दुर्गन्ध आती रहती थी। यही नहीं, फौजी गोरों ने उनके घर पर हमला किया और एक रात उनका सब-कुछ लूटकर ले गये। उस रात का वर्णन करते समय जैसे वह खो जाते थे। वह कंगाल हो गये, पर उनका मन भी कंगाल हो जाय तो शर्माजी कैसे? उस सौम्य-शान्त मुस्कान में तनिक भी विकृति नहीं आई। भारत और थाईलैण्ड के सम्बन्धों को मधुर और सदृढ़ करने के प्रयत्न में

वह फिर से जुट गये। उन्होंने थाई भाषा में प्रयुक्त होने वाले संस्कृत के १,००० से भी अधिक शब्दों की सूची तैयार की। थाई-रामायण का हिन्दी में अनुवाद कराया। यह अनुवाद प्रसिद्ध आर्य विद्वान पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने किया है। हमसे बोले, 'आये हो तो यहां के कुछ विद्वानों से भी मिल लो।"

यशपाल जी तो स्वयं ही आतुर थे, तुरन्त ही 'थाई-भारत कल्चरल लॉज' के प्रधान, थाईलैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान फाया अनुमान रचथोन (राजधन) से मिलने का समय तय किया। उसके बाद प्रिन्स धानी निवात से भी बातें की। प्रिन्स न केवल एक विद्वान हैं, बल्कि राजनेता भी हैं। इस समय वह प्रिवी कौंसिल, स्यामी सोसायटी तथा नेशनल कौंसिल ऑव म्यूजियम के अध्यक्ष हैं। उन दोनों महानुभावों से भेंट करने पर पता लगा कि वे लोग शर्माजी की कितनी इज्जत करते हैं। दोनों देशों में परस्पर साहित्य का आदान-प्रदान कैसे हो, इसकी चर्चा चलने पर दोनों ने यही कहा कि शर्माजी ही यह काम कर सकते हैं। वह स्वयं भी थाई भाषा जानते हैं।

श्री रचथोन ने जब शर्माजी की ओर देखा तो उन्होंने मुस्कराकर कहा, 'मैं तो कामचलाऊ भाषा जानता हूं और अब ६३ वर्ष का भी हो चला।

श्री रचथोन हँस पड़े, "उसमें ६ वर्ष जोड़ दो। मैं ७२ का हूँ और इतना काम करता हूं। आप लोग मुझसे बातें करने आये, इससे मेरी पत्नी बहुत खुश हैं, क्योंकि इतनी देर तो मैं काम करने से बचा रहूंगा।"

हम लोग खूब हँसे, उनकी पत्नी भी हँसीं। प्रिंस धानी निवात तो शर्माजी के बहुत ही प्रशंसक हैं। बोले, "पण्डितजी बहुत अच्छा काम कर रहे हैं।"

पण्डितजी ने कृतज्ञ भाव से हाथ जोड़े और कहा, "मैं क्या करता हूँ, करनेवाले तो आप ही हैं।'

प्रिंस धानी निवात मुस्करा दिये, क्योंकि वह जानते हैं कि शर्माजी सचमुच बहुत काम करते हैं, बहुत अच्छा काम करते हैं। उन्होंने उन्हीं दिनों बड़े प्रयत्न से भारत के प्रधान मन्त्री स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू

द्वारा बोधि वृक्ष की एक शाखा प्राप्त की थी और उसे वह समारोहपूर्वक वहाँ के सबसे बड़े बौद्ध गुरु को भेंट करने का आयोजन कर रहे थे। ऐसे आयोजन वह अक्सर करते रहते हैं। फाया अनुमान रचथोन, प्रिंस धानी निवास आदि प्रसिद्ध विद्वान और वहाँ के राजनेता उसके साक्षी हैं।

भारत लौटने पर पता लगा कि एक बहुत बड़े उत्साह के साथ यह कार्य सम्पन्न हुआ। शर्माजी थाईलैण्ड के २०,००० भारतीयों के प्रिय नेता हैं। थाई सरकार भी उनका सम्मान करती है। वहाँ के पत्रकार, लेखक और विद्वान सभी उनके प्रशंसक और मित्र हैं। कुछ भारतीय आर्य-समाज के अधिकारी हैं, कुछ हिन्दू समाज के संचालक हैं, सभी ने हम पर प्रेम की वर्षा की, परन्तु विष्णु मन्दिर, गुरुद्वारा आदि को मिलाकर ये सभी संस्थाएँ उपयोगी होकर भी इस समय अनजाने ही मिलाने से अधिक अलग करने का काम करती जान पड़ती हैं। परन्तु शर्माजी सबके साथ रहकर भी सबसे दूर, 'थाई भारत कल्चरल लॉज' द्वारा न केवल प्रवासी भारतीयों की सुख-सुविधा का ध्यान रखते हैं, बल्कि दो देशों को निरन्तर पास लाने का प्रयत्न करते रहते हैं। आयु बढ़ रही है, उनकी चिन्ता भी बढ़ रही है। जब हम चलने लगे तो हमने उनसे पूछा, "हमारे योग्य कोई सेवा बताइये।"

वह तुरन्त बोल उठे, "सेवा एक ही है कि भारत जाकर एक ऐसा व्यक्ति यहाँ भेजिए जो विद्वान हो, सेवा-भावी हो, मिशनरी हो और जो स्वामी सत्यानन्द के काम को सम्हाल सके। मुझे रुपये की कमी नहीं है कमी काम करने वाले की है।"

"सुना है, भारत से कोई आया था।"

शर्माजी विद्रूप से बोले, "हाँ, एक सज्जन आये थे। पर लॉज की टाइपिस्ट से ही साँठ-गाँठ कर बैठे। विदेशों में काम करने वालों को बहुत ऊँचे चरित्र की आवश्यकता है। थाईलैण्ड सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के कितना पास है।"

शर्माजी मौन हो गये, जैसे उनकी तड़प ने उनकी वाणी को अवरुद्ध कर दिया हो।

पेनांग से लौटते हुए बैंकाक के हवाई अड्डे पर कुछ देर रुकना था

शर्माजी को सूचना दे दी थी। जब हम हवाई अड्डे पर उतरे तो वर्षा हो रही थी। लेकिन देखते क्या हैं कि शर्माजी सदल-बल वहाँ उपस्थित हैं। स्वामीजी, जगदीशजी, मुनीश्वरजी आदि सभी आये हैं। क्या बताऊँ, उन्हें देखकर कैसा लगा! लौटते समय उन्होंने कहा, "मेरी बात याद रखना और वैसा कोई व्यक्ति भेज सको तो भेजना।"

अभी भी जब कभी निराशा आ घेरती है तो सौम्य-शान्त शर्माजी की उस मुस्कराती हुई मूर्ति का स्मरण कर लेता हूँ। मन जैसे विश्वास से भर उठता है। सुनता हूँ जैसे कोई कह रहा है, 'कोई भय नहीं, सब कहीं अपना ही घर है, सब अपने ही हैं।'

रंगून का वह नाजुक डाक्टर

जीवहत्या के डर से जैन साधु मुंह पर पट्टी बाँधते हैं। डा० ओम्‌प्रकाश जैन धर्म के यहाँ उपासक नहीं हैं पर वह इतने धीमे स्वर मे बोलते हैं कि उनकी बात समझने के लिए बहुत कुछ अपनी अनुमान शक्ति पर निर्भर करना पड़ता है। वह इस तरह आपकी ओर देखते हैं कि अनायास ही आपको प्राचीनकाल की लजीली नववधू की याद आ जाती है। सचमुच वह इतने अहिंसक हैं कि अपनी वाणी या दृष्टि से किसी को कष्ट पहुँचाने मात्र की कल्पना ही उन्हें पीडा देती है। वह जैसे प्रति क्षण मानो यही कहते हैं—धीरे से बोलो, जिससे क्रोध से कह सको, और दृष्टि नीची रखो, जिससे कोई घायल न हो जाय।

लेकिन वह नहीं जानते कि यही अदाएँ उनके सम्पर्क मे आनेवालो को सदा के लिए घायल कर देती हैं, और वह उन्हे बस प्यार ही कर सकता है। ४०२ मुगल स्ट्रीट, रगून के उनके क्लीनिक[1] पर लगी भीड को देखकर इसका सहज ही अनुमान हो आता है। बर्मा मे रहने वाले सभी वर्गों और जातियो के भारतीय तो उस भीड मे होते ही हैं, बर्मी भी बहुत बड़ी सख्या मे दिखाई देते हैं। उस समय उनसे बातें करना असम्भव है। नही जानता, वह अपने धन्धे मे कितने पारगत हैं, पर मानव व्यापार मे उन्हे कोई पराजित नही कर सकता। आधा रोग तो वह अपनी मृदु मुस्कान, लजीली दृष्टि और मधुर वाणी से हर लेते हैं।

और वह केवल एक ही फार्मेसी मे बैठते हैं, सो बात भी नही है।

---

१ बाद में वह नये शासन मे सरकारी नौकरी में ले लिये गये थे और अन्यत्र भेज दिये गये थे। अवकाश प्राप्त करने के बाद वे फिर रगून आये। राजनीतिक उथल-पुथल के कारण स्थिति बदल गयी थी, इसलिये अन्ततः उन्हें भारत आना पड़ा।

बहुत सवेरे वह आर्यसमाज की डिस्पेंसरी में पहुँच जाते हैं और दो घंटे तक वैसी ही भीड़, वही मुस्कान, वही हँसी की फुलझड़ियाँ वहाँ दिखायी देती हैं। उनकी हँसी कभी आँखों और ओठों से नीचे नहीं उतरती, लेकिन दूसरे को लोट-पोट कर देती है। ऐसे कोमल-हृदय डॉक्टर ओमप्रकाश चलते बहुत तेज हैं, क्योंकि समय की सीमा है, लेकिन मरीजों की संख्या पर कोई बन्धन नहीं है। घर आते-जाते रोगी आगे-पीछे रहते हैं। फिर कुछ रोगियों के घर जाना भी अनिवार्य है। कुछ का घर आना भी अनिवार्य है। परिणाम यह होता है कि जब वह मित्रों को पत्र लिखते हैं तो उनके अक्षर उनकी वाणी की तरह अस्पष्ट रह जाते हैं, लेकिन उस अटपटी भाषा और लिपि का अर्थ तो कोई प्रेमी ही समझ सकता है। इसीलिए जो उन्हें नहीं जानते, उनके कभी-कभी गलतफहमी के शिकार हो जाने का डर रहता है।

उनसे मेरी पहली भेंट दिल्ली में ही हुई थी। नाटक की तलाश करते-करते वह मेरे पास पहुँच गये थे। किसी के सूचना देने पर नीचे जाकर देखा कि धरती में दृष्टि गड़ाये एक गौरवर्ण, सुगठित बदन के बन्धु वहाँ खड़े हैं। उस दिन की उनकी दृष्टि में न जाने क्या था कि वह आज भी मेरा पीछा करती रहती है। उनके उस प्रवास में दो-तीन बार मिलना हुआ और पाया कि जैसे यह व्यक्ति सचमुच ही मित्र-जाति का है।

डाक्टरी की बातें करते-करते मैं नाटक पर आ गया और यह सच है कि डाक्टर ओमप्रकाश शरीर के रोगों के ही डाक्टर नहीं हैं, मन के रोगों को दूर करने की विद्या भी जानते हैं। रंगून के भारतीय शरीर के साथ-साथ अपना मन भी इन्हें सौंपकर सन्तुष्ट हैं और इसी कारण एक सुन्दर हिन्दी-नाटक उन्हें प्रतिवर्ष देखने को मिलता है। श्री सत्यनारायण गोयनका आदि कई उत्साही मित्रों के साथ वह केवल रंग नाटक ही नहीं प्रस्तुत करते, अवसर मिलने पर बर्मा रेडियो पर भी हिन्दी नाटक प्रसारित करते हैं। मैं साक्षी हूँ कि ध्वनि और रंग दोनों नाटकों को प्रस्तुत करने का स्तर किसी के लिए भी ईर्ष्या का कारण हो सकता है। गोयनकाजी व्यापारी होते हुए भी जन्मजात अभिनेता हैं और घण्टों जनता को स्तब्ध रख सकते हैं।

डाक्टर ओमप्रकाश एक मिशनरी की उत्कट भावना से ओत-प्रोत हैं। इसीलिए बर्मा में हिन्दी-प्रचार के वह एक स्तम्भ हैं। हिन्दी-साहित्य सम्मे-

रान के तत्वावधान मे वह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के केन्द्र चलाते हैं और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओ का प्रबन्ध करते हैं। दूसरे व्यक्ति पढने मे रुचि लें, इसलिए वह स्वय भी 'साहित्य-रत्न' पास कर चुके हैं। और उनकी पत्नी भी कर चुकी हैं। पूरा परिवार दीवाना है। पत्नी रगून मे पढाती हैं, बहन माडले मे पढाती हैं, भाई सुन्दर अभिनेता हैं और बहन कुशल अभिनेत्री···

डाक्टर ओमप्रकाश रगून आर्यसमाज के भी एक स्तम्भ हैं। कालेज-स्कूल का उत्तरदायित्व भी इनके कन्धो पर है। सच तो यह है कि वह रगून मे भारतीय जीवन के हृदय है। वैसे ही जैसे हृदय रक्त का सचालन करता है, डाक्टर ओमप्रकाश भी बर्मा के जनजीवन मे प्राण फूँकते हैं।

और हृदय क्या है?

हृदय मनुष्य है। डॉक्टर ओमप्रकाश भी मनुष्य हैं। जो जानते हैं कि मौन सर्वोत्तम भाषण है, इसीलिए कम से कम बोलते हैं। जो जानते हैं कि दृष्टि ऊपर करने मे अभिमान है और अभिमान हृदय मिलन के मार्ग की बाधा है, इसीलिए वह कम-से-कम देखते हैं। और इसीलिए आदमी को और आदमी की आवश्यकता को पहचानते हैं।

रगून जब पहुँचे तो जलोत्सव का रगीला त्योहार आरभ हो चुका था। हम उसका पूरा आनन्द लेना चाहते थे। तीन दिन तक डाक्टर साहब और गोयनकाजी आदि मित्र हमारे साथ ही घूमते रहे। पता लगा कि न जाने कितने वर्षों म डाक्टर साहब ने इस उत्सव मे भाग लिया है। निरन्तर जल-वर्षा के कारण हमारे जूतो के खराब हो जाने का डर था। इसलिए दूसरे दिन सवेरे अभियान पर निकलने से पूर्व क्या देखता हूँ कि डाक्टर साहब तीन जोडी चप्पलें बगल मे दबाये चले आ रहे हैं। पास आकर वह धीरे से हँसे और बोले :

"आपके लिए। क्षमा कीजिए, बाजार बन्द है, बढिया न ला सका।"

यशपालजी बोले, "अरे, आप ये क्यो ले आये?"

धीरे से उत्तर दिया, "होली जो है!"

इस अनेक अर्थगर्भित उत्तर पर जो कहकहा लगा, उसमे हमारी कृतज्ञता के आँसू भी बह गये।

हम लोग भारत से केवल ७५-७५ रुपये लेकर ही चले थे। बर्मा से जब थाईलैण्ड जाने लगे तो पता लगा कि उनके अतिरिक्त १००-१०० च्याट (बर्मी रुपया) भी ले जा सकते हैं। जाने से पहली रात को मित्र लोग बहुत देर तक बैठे रहे। डाक्टर साहब उनके जाने के बाद भी बैठे रहे और जब जाने लगे तो सौ-सौ रुपये के दो नोट मेरी ओर बढ़ाये। फुसफुसाते हुए कहा, "रख लीजिए। काम आ सकते हैं।"

हम दोनों चकित-विस्मित देखते रह गये, "यह क्या डाक्टर साहब?"

"ठीक है। परदेश जा रहे हैं।"

और डाक्टर साहब नमस्कार करके नीचे उतरते चले गये। क्षणभर स्तब्ध रहकर यशपालजी ने कहा, "कैसा है यह आदमी! न बोलता है, न बोलने का अवसर देता है।"

मैंने उत्तर दिया, "यह आदमी बोलने का नाटक नहीं करता। सचमुच ही बोलता है।"

ये दो छुटपुट घटनाएँ नहीं हैं, लेकिन सोचता हूँ, किस-किस का वर्णन करूँ और फिर वर्णन करके उस महान को छोटा भी क्यों करूँ। माडले जाना है, डाक्टर साहब और गोयनकाजी गाड़ी पर सब प्रबन्ध किये मौजूद हैं। उनका आग्रह है कि जियाबड़ी जाना ही चाहिये। और वह स्वयं टिकट लिये राह देख रहे हैं। गाड़ी ने सीटी दे दी और वह मुँह उठाये बाहर की ओर देख रहे हैं कि हम पहुँचे। यशपालजी अस्वस्थ हैं और डाक्टर साहब ६५ पैड़ियाँ चढ़कर दिन में चार बार देखने आते हैं।

और यशपालजी कहते रहते हैं, "यह आदमी है!"

और वास्तविकता यह है कि वह स्वयं भी अस्वस्थ थे। डिस्पेंसरी से थके प्राण लेकर १-२ बजे लौटते और ऊपर आते। कभी-कभी ड्राइवर को भेजकर हमें नीचे बुला लेते तो बाद में बार-बार कहते, "ड्राइवर को भेजने के लिए माफी चाहता हूँ।" हम लोग दिन में एक बार भोजन करते हैं, यह जानकर उन्होंने तुरन्त कहा, "मुटापा कम करना चाहता हूँ, ऊपर नहीं चढ़ा जाता। बस आज से मैं भी एक ही वक्त खाया करूँगा।" और सचमुच उन्होंने यही किया। बाद में एक पत्र में लिखा, "ऐसा करने से बड़ा लाभ है।"

शरतबाबू के जीवन के सम्बन्ध मे खोज करने बर्मा गया था। जितने आदमियो से मिल सकूँ, मिलना चाहता था। मेरे वहाँ पहुँचने से पूर्व ही वह उसका बहुत-कुछ प्रबन्ध कर चुके थे। पहले वह स्वयं उनमे मिलते, समय तय करते, अक्सर साथ ले जाते। यह सब उनकी व्यस्तता को और भी बढा देता। पर क्या मजाल कि कभी उनकी मुस्कान मे कमी पड जाय और कमी पड जाय तो उन्हे डाक्टर ओमप्रकाश कैसे कहा जाय? डाक्टर विश्वास को ढूँढ लेना और उनसे मेरी भेंट करा देना उन्ही का काम था। 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने बर्मी जीवन पर मेघाणीजी के एक उपन्यास का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है। डाक्टर साहब ने उसे पढ़ा और उच्चारण की दृष्टि से सभी शब्दो को ठीक कर दिया। अपने आराम के कुछ क्षणो का उपयोग वह प्राय: इसी तरह करते हैं।

बहुत वर्ष पहले एक दिन उनके पिता रोजी की तलाश में पजाब से रंगून गये थे। डाक्टर साहब वही पैदा हुए और वहीं हैं। जनता उन्हें प्यार करती है। बर्मा की सरकार उनका आदर करती है। वह उन कुछ भारतीयों में से हैं जो स्थिति का सही-सही मूल्यांकन करना जानते हैं। हृदय और बुद्धि की ऐसी समान परिपक्वता कम देखने को मिलती है। किसी के सम्बन्ध मे वह शीघ्र राय नहीं बनाते और बनाते हैं तो वह असन्तुलित नही होती। बर्मी नारियो की चर्चा करते हुए मैंने सन्यासी तक को असन्तुलित होते देखा है। डाक्टर ओमप्रकाश से मेरी इस सम्बन्ध में काफी चर्चा हुई। उन्होंने कहा, "बर्मी नारी को पति छोड़ने का अधिकार है, लेकिन ऐसा करना आम बात नही है। वे प्रेम करना जानती हैं और प्रेम से ही रहती हैं। हम हिन्दुओ ने उनके साथ बुरा बर्ताव किया है।"

उत्थान और पतन के अनेक दृश्य उनकी आँखों मे चित्रित हैं। जापानी आक्रमण और उसके अत्याचार की कहानी उनकी जबान पर है। पर हर अनुभव जैसे उनकी मानवता को और भी प्राणवान बनाता है। वह अकिंचन व्रत के व्रती हैं। वह दावा नही करते, प्रेम के पथ पर दावा चलता भी नही। वह शोर नही मचाते, क्योंकि शोर मचाने से प्रेम अपना मूल्य खो देता है। 'न कुछ' होने ही मे उनकी महानता का रहस्य है। वह जहाँ बैठते हैं सुगन्धित फलों का बगीचा वहाँ खिल उठता है। एक स्वागत-सभा में मैंने

कहा, "आप लोगों के स्नेह की तो अति हो गयी। डरता हूँ कि कहीं अपच हो जाय।"

सम्मेलन के नये अध्यक्ष जोशीजी बोल उठे, "कोई डर नहीं, डाक्टर साहब ठीक कर देंगे।"

गोयनकाजी ने कहा, "डाक्टर देखना, कहीं स्नेह समाप्त न हो जाय।"

डाक्टर साहब धीरे से हँसते हुए बोले, "न, समाप्त नहीं करूँगा पचाने की दवा दूँगा।"

और सारी सभा कहकहों से गूँज उठी।

सचमुच डॉक्टर ओमप्रकाश जिस स्नेह के मूर्तिमान प्रतीक हैं, वह न उबलता-उफनता है, न रक्त मांसहीन है, वह तो मौन होकर ही सहस्र जिह्वाओं से बोलता है और अपनी सरलता निश्छलता में से ही शक्ति ग्रहण करता है। उन जैसे, सरल और परन्तु प्रखरतर सहृदय और कलाप्रेमी व्यक्ति विरल होते हैं। वह विधाता की उन विभूतियों में से हैं, जो दूसरे के सुख-दुःख को वाणी के माध्यम से नहीं, बल्कि मन के भीतर से समझते हैं।

एक रचनात्मक प्रतिमा

शायद पहली बार दिल्ली की सुपरिचित प्रकाशन संस्था सस्ता साहित्य मण्डल में उनसे भेंट हुई थी। लगा जैसे पर्वत प्रदेश का कोई देहाती कन्धे पर झोला लटकाये इस महानगर में आ भटका हो, पर वह तनिक भी तो परेशान नहीं मालूम होते थे। नाति दीर्घ काया, पर गठन अपूर्व और आँखों में तरल मुस्कान ऐसी कि सामने वाले को अभिभूत कर दे। सब कुछ भूल गया हूँ। उनकी नेपाली टोपी तक भूल गया हूँ, पर वह अप्रतिम मुस्कान जैसे मन-मस्तिष्क पर पैवस्त होकर रह गयी है। आज भी उसका स्मरण करके मनुष्य के स्नेह और सौजन्य के प्रति आश्वस्त हो जाता हूँ।

सचमुच वह दुर्लभ गुणों का साकार रूप थे। उनसे मिलना किसी अमूल्य निधि को पाने जैसा था। भोर में गांधी समाधि पर घूमते-घूमते सहसा देखता कि मुख्य द्वार से होकर तुलसी मेहरजी चले आ रहे हैं—पैरों में सुस्थिर गति, मुख पर दीप्त मुस्कान। पास आकर वह मुस्कान और गहरी हो उठती।

वे सदा व्यस्त रहते। कभी राष्ट्रपति से मिलना है, कभी प्रधानमंत्री से, कभी गांधी निधि के सरक्षकों से। फिर भी हम से मिलने राजघाट अवश्य पहुँचते। नेपाल में गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को जिस कर्मठ कुशलता के साथ उन्होंने प्रचारित किया वैसा शायद भारत में भी कम ही व्यक्ति कर गये होंगे। वे सम्पूर्ण रूप से समर्पित व्यक्ति थे। उनके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ निरन्तर सघन होती रहतीं—कौन पूछेगा उनके बाद खादी को? क्या होगा उनके इस काम का जिसके लिए वे अपना तन-मन लगा रहे हैं, इसीलिए तो कि उनके गरीब देशवासी स्वावलम्बी बनकर जी सकें।

नेपाल और भारत दो प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र हैं। दोनों को अपनी तरह से अपने-अपने भाग्य का निर्णय करने का अधिकार है, लेकिन दोनों की आत्मा अविभाज्य है। मात्र धर्म ही नहीं, सभ्यता और संस्कृति, चिन्तन और संस्कार, भाषा और साहित्य सभी क्षेत्रों में, कितने पास हैं हम। भारत के स्वाधीनता-संग्राम में कितने नेपाली जूझे हैं।

उसी परम्परा के श्रेष्ठ रत्न थे तुलसी मेहरश्रेष्ठ। अन्तर्राष्ट्रीय सद्-भावना और सहयोग के लिए सन् १९७७ का नेहरू पुरस्कार पाकर वह धन्य नहीं हुए, पुरस्कार उन्हें पाकर धन्य हो गया। उसे धन्य ही करने को वह जैसे इस धराधाम पर रुके थे। वह कार्य सम्पन्न हुआ और वे चुपचाप चले गये। लेकिन सोचता हूँ कि क्या कभी ऐसी सरस प्राण, निरभिमानी आत्माएँ किसी से विदा लेती हैं। वह यहीं हैं। पहले हम उन्हें पार्थिव आँखों से देखते थे अब अन्तर की आँखों से देखते हैं। सन् १९७२ के सितम्बर मास के अन्त में उनसे अन्तिम बार भेंट हुई थी। विनोबा के सुझाव पर उन्होंने अपने को सब ओर से मुक्त करके, जीवन के अन्तिम दिन सेवाग्राम में बिताने का निश्चय किया था। उनकी आयु ७७ वर्ष की हो चुकी थी। लेकिन स्वास्थ्य ने उनका साथ नहीं दिया। नेपाल में चल रही रचनात्मक प्रवृत्तियाँ भी उनका अवलम्बन नहीं छोड़ पा रही थीं। दो वर्ष बाद १९७४ में वे फिर अपनी मातृभूमि नेपाल लौट गये।

वे भारत से निरन्तर जुड़े रहे पर अपनी मातृभूमि के प्रति उनके प्यार में जरा भी कमी नहीं आ पायी। तब का वह दृश्य मैं नहीं भूल सकता, जब राजनीतिक क्षेत्रों में यह आरोप प्रबल हो उठा था कि कुछ विद्रोही नेपाली राजनेता भारत की भूमि पर से नेपाल प्रशासन के विरुद्ध आन्दोलन का सचालन कर रहे हैं। सर्वदा की तरह वे राजघाट पर हम से मिलने आये थे कि न जाने किस प्रसंग में यह चर्चा चल पड़ी। क्या देखता हूँ कि दो ही क्षण में वे उग्र हो उठे हैं और कह रहे हैं, "आप क्यों अनदेखा करते हैं इस बात को। क्यों नहीं रोकते उन्हें। क्या यह दूसरे देश की अन्दरूनी बातों में दखल देने जैसा नहीं है?"

हम लोग राजनीति से बहुत दूर थे, इसलिए ऐसे प्रसंग हमारे सम्बन्धों को विशेष प्रभावित नहीं करते थे। वे सदा की तरह मिलते रहे और अपनी

समस्याओं का हल ढूंढ़ते रहे। उन्होंने अपने जीवन की कहानी भी हमें सुनायी। बताया कि कैसे स्वामी दयानन्द सरस्वती के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ-प्रकाश' से प्रभावित होकर उन्होंने मांस-मदिरा का त्याग कर दिया था। उन्होंने 'सत्याचरण सभा' की स्थापना कर औरों को भी ऐसा करने को प्रेरित किया। यही आन्दोलन नेपाल के तानाशाह राणाओं की आँखों में खटक उठा। उन्हें गिरफ्तार करके बारह वर्ष के लिए जेल में बन्द कर दिया गया। हां, इसका एक विकल्प था 'आजन्म देश निकाला'।

वे बोले, "जेल में रहकर मैं क्या करता। मैंने महाराणा चन्द्र शमशेर से कहा, "मुझे भारत जाने दो। गांधीजी के पास रचनात्मक काम सीखूंगा।"

ऐसे उग्र आदमी से इतनी आसानी से मुक्ति मिले इससे अच्छा और क्या हो सकता है। इसलिए महाराणा ने उन्हें अनुमति ही नहीं दी, मार्ग-व्यय और छः महीने के लिए छात्रवृत्ति भी दी।

उस दिन के बाद, लगभग ५८ वर्ष तक, तुलसीमेहरजी भारत-नेपाल के बीच सुदृढ़ सेतु बनकर जिये। इन वर्षों में कैसे एक अनपढ़ उग्र युवक एक तपे हुए रचनात्मक कार्यकर्ता के रूप में विकसित हुआ यह रोमांचक कहानी है। आज के दिशाहीन युवा-जगत् के लिए आदर्श हो सकती है। अदम्य इच्छा शक्ति और पूर्ण समर्पण की भावना के कारण उन्होंने गांधीजी के सान्निध्य में न केवल स्वयं खादी उत्पादन और ग्रामोद्योग की शिक्षा पायी बल्कि घर-घर घूमकर अनेकानेक व्यक्तियों को सिखाया भी।

चार वर्ष बाद सन् १९२५ में वे फिर नेपाल लौट गये। उस समय वे बड़ी दुविधा में थे, लेकिन गांधीजी ने उन्हें आश्वस्त किया, "तुम नेपाल जाना चाहते हो इसलिए जाओ। इतना ही नहीं बल्कि मैं कहता हूँ कि एक बार तुम नेपाल जाकर अपने प्रधानमन्त्री राणा साहब से मिलकर बातें करो कि वे तुम्हारा उपयोग नेपाल में अच्छी तरह से करेंगे या नहीं। करें तो अहोभाग्य। अगर तुम्हें अपनी मातृभूमि की सेवा करने को न मिले तो वापस चले आओ और इधर भारत में ही जो सेवा बन सके करते रहो। इसमें दुख मानने की कोई बात नहीं। भारत में तुम जो सेवा करोगे उसका फल नेपाल के हिमालय की चोटी पर जाकर फैलेगा।"

वे नेपाल तो लौटे परन्तु अभी भी अपने कार्य-क्षेत्र के बारे मे कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि एक दिन उन्होंने स्वप्न देखा जैसे गांधीजी उनसे कह रहे हैं, 'तुममे निस्वार्थ भाव से चर्खे द्वारा गरीब जनता की सेवा करने का जो विशेष गुण है वह कम महत्त्व की बात नहीं है···जैसे-जैसे तुम्हारा कार्यक्षेत्र बढता जायेगा, वैसे-वैसे ईश्वर तुम्हारे मार्ग मे प्रकाश डालता जायेगा। परन्तु तुम सासारिक क्षुद्र स्वार्थ मे फँस जाओगे तो तुमको इस दुनिया मे सँभालने वाला कोई भी नहीं होगा और तुम्हारा पतन अवश्यम्भावी होगा···।'

तुलसीमेहरजी ने तुरन्त इस स्वप्न की बात गांधीजी को लिख भेजी। उत्तर भी तुरन्त आ गया, "स्वप्न अच्छा था। उसमे तुमने जो सुना उससे ज्यादा कुछ भी मैं कह नही सकता···।"

बस उसी दिन से उन्होंने काठमाण्डू, पाटन और भक्तपुर मे खादी का कार्य आरम्भ कर दिया। उसके बाद कैसे 'नेपाल गांधी स्मारक निधि' और गांधी आदर्श विद्यालय स्थापित और विकसित हुए यह अनोखी कहानी है। सितम्बर, १९६४ मे जब हम नेपाल-यात्रा पर गये थे तब उन्ही के मेहमान थे। वे स्वय तो दिल्ली मे थे पर उनके सहयोगी श्री रुद्रलाल और उनकी बहन कुमारी बीलू प्यारी ने जिस प्रकार हमारी देखभाल की वह अनुभव करने की चीज़ है, शब्द देने की नही। तभी हमने मनोहरा ग्राम मे (जहाँ हम ठहरे थे) आदर्श गांधी महिला विद्यालय देखा, पाटन मे चर्खा प्रचार गुठी तथा महिला उद्योग मन्दिर की गतिविधियो से परिचय पाया। वागमती के तटवर्ती शखमूल घाट पर उनका निवास स्थान भी देखा। चारों ओर निर्जन वातावरण, पास ही श्मशान भूमि, वही धर्मशाला में ऊपर की मजिल मे उनकी वह छोटी-सी कोठरी है। उसी कोठरी से पाटन, मनोहरा और जनकपुर आदि मे रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चला रहे थे। शव-साधना यही तो है। महिला विद्यालय का आदर्श तुलसीमेहरजी का आदर्श रहा है।

ज्ञान प्राप्त करो कर्म करने के लिए।
कर्म करो ज्ञान प्राप्त करने के लिए।
स्वावलम्बी बनो जीने के लिए।

जीयो सेवा करने के लिए।

और वे सचमुच सेवा करने के लिए ही जीते रहे। अपने देश की गरीब जनता को स्वावलम्बी बनाने के लिए अम्बर चर्खे के केन्द्र खोले, शिक्षा के लिए स्कूल खोले। उनको ऐसे पालते रहे जैसे माँ अपनी कोख के जायों को पालती है। वह सचमुच माँ-जाति के व्यक्ति थे। देने के लिए उनके पास ममता थी, करने के लिए सेवा थी। निरभिमानता, निर्भयता, सत्य और संयम उसके आधार थे इसीलिए वे बोलते कम, मुस्कराते अधिक थे। इसलिए उन्हें सत्ता से अरुचि थी, मन्त्रिमण्डल में आने का निमन्त्रण उन्होंने ठुकरा दिया था। उनकी तो यही कामना थी कि उसकी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलती रहें जिससे निर्धन और बेरोजगार लोग जीना सीख सकें।

पुरस्कार लेते समय का जो चित्र समाचार-पत्रों में देखा, उससे हर्ष भी हुआ और पीड़ा भी हुई। हर्ष इसलिए कि सचमुच जो अधिकारी था उसका सम्मान हम कर सके। पीड़ा इसलिए कि ऐसे व्यक्ति को भी रोगशैया पर लेटना पड़ा। तब भी सोचा कि उन्हें बधाई का पत्र लिखूँ कि समाचार आया कि भगवान् मृत्यु के रूप में उनके पास आये और उन्हें ले गये।

वे अब सबके हैं, सब कहीं हैं। मुझे उन्हें पत्र लिखने की जरूरत ही क्या थी। शायर ने जो ये लिखा है—

दिल के आइने में है तस्वीरे यार
जब जरा गरदन झुकायी देख ली।

इसका अर्थ ऐसे ही अवसरों पर समझ में आता है क्योंकि कीर्ति ने जिनका वरण कर लिया है, वे न भी नहीं मरते।

केदारनाथ के पण्डा जी

प० कृपाराम से मेरी भेंट रुद्रप्रयाग के सरकारी डाक-बंगले पर हुई। उस दिन मौसम सुहावना था। बादल छँट गये थे और आशा होने लगी थी कि अब आगे की यात्रा में कोई विशेष कष्ट नहीं होगा। वैसे बदरी-केदार की यात्रा सहज नहीं है। सहजता का अभाव ही उसका एक प्रबल आकर्षण है। रुद्रप्रयाग में इस अभाव का अच्छा-खासा परिचय मिल गया था। डाक बंगले के पास ही मन्दाकिनी और अलकनन्दा का तूफानी संगम होता है। उनका वेग कोई जटाधारी शिव ही संभाल सकता है। और उनका स्वर-घोष, मुझे विश्वास है कि भौतिक युग के वाहन सैकड़ों इंजन मिलकर भी उसे दबा सकने में असमर्थ होंगे। अपने चिर प्रियतम सागर से आत्मसात् करने को वे इतनी उतावली-सी भागती हैं कि स्वयं उनके जनक हिमाचल को स्तम्भित रह जाना पड़ता है। बेचारे दूर तक उनके साथ आते हैं पर दुहिताएँ किसकी हुई हैं। बिछोह की उस घड़ी को अमर करके वे उस उन्माद को आज तक देखते चले आ रहे हैं और जब तक जग है देखते ही रहेंगे, पर *मनुष्य की बुद्धि को देखिए, वह उनकी इस अवस्था में* भी रस लेता है। अवसर खोज-खोजकर वह इन भयानक प्रदेशों में स्वास्थ्य और सौंदर्य, सुख और शान्ति की तलाश में आता है। उसके धर्म का व्यापार भी इसी स्वर्ग में होता है। प० कृपाराम उन्हीं मनुष्यों के पण्डा हैं। व्यापारिक भाषा में उन्हें कमीशन एजेण्ट कहा जा सकता है।

जैसा कि मैंने अभी कहा था, उस समय सन्ध्याकाल था। हिम प्रदेश का सूर्य धीरे-धीरे सामने की पर्वत शृंखला के पीछे उतरता जा रहा था और मैं मौन मुग्ध प्रकृति की सतरंगी सुषमा को निहारता हुआ सुदूर भूत में भटक गया था, उस भूत में जिसमें यक्ष, किन्नर और किरातों का साहस इस अछूते सौंदर्य का रसास्वादन किया करता था। कितने शक्तिशाली होंगे

वे लोग…

कि सहसा मेरा ध्यान भंग हो गया। देखा—बाहर बरामदे में कोई अपरिचित लम्बे-लम्बे डग रखता हुआ धीर-गम्भीर गति से घूम रहा है। कौतूहल बढ़ा। मैं उठकर बाहर आ गया। क्या देखता हूँ कि कन्धे पर गमछा डाले, कमीज, धोती और साफे से लैस एक मानव-रूपधारी जन्तु उपस्थित है। उनके नयन अनुपात से हाथी के नयन के समान सकुचित और भावहीन हैं। उनका मुख यद्यपि पतला है पर उसी की तरह दिल की बात बता सकने में असमर्थ है। गरदन कुछ चील की तरह कोण बनाती है। उनकी टाँगें बगुले की तरह लम्बी हैं और चाल ऊँट की भाँति धीर-गम्भीर है। वह बिल्ली की भाँति अतिशय विनम्र जान पड़ते हैं और उनकी मूँछों के बाल चूहे की मूँछ की भाँति सारा स्थान घेरने में विश्वास नहीं करते। मुझे देखते ही उन्होंने दोनों हाथ जोड़े और फिर अलिप्त भाव से उन्हें माथे तक ले जाकर प्रणाम किया और पूर्ववत: घूमते रहे। मेरे साथी राज्य के एक अधिकारी थे। मैंने समझा ये विचित्र प्राणी उन्हीं के कलाद्रष्टा हैं। मैं कुछ आगे बढ़ा तो उन्होंने एक बार फिर अलिप्त भाव से प्रणाम किया। वह दूसरा प्रणाम कुछ अर्थभरा था। मैं झिझका कि उनसे कुछ पूछूँ पर इससे पूर्व ही चपरासी ने अन्दर से आकर कहा, "साहब बोलते हैं कि उन्हें आपकी जरूरत नहीं है।"

वे मुसकराये और बोले, "अच्छा?" फिर मेरी तरफ एक छपा हुआ कागज बढ़ाया। मैंने पूछा, "क्या है?"

"देखिये।" वे मितभाषी बोले।

मैंने एक बार फिर उनका निरीक्षण किया। भला आदमी कोई भी तो भाव प्रकट नहीं कर रहा था। बड़ा क्रोध आया विधाता की इस रसहीन सृष्टि पर और मन मारकर उस मुद्रित पत्रक को देखने लगा। सबसे ऊपर मोटे अक्षरों में केदारनाथ के पण्डा पं० कृपाराम कुंजीराम का पूरा पता अंकित था। नीचे क्रम से उत्तराखण्ड यात्रा के मार्ग पर आने वाले सभी पड़ावों की सूची दी हुई थी। साथ ही प्रत्येक पड़ाव के बीच की दूरी भी लिखी हुई थी। मैंने गरदन उठाकर पूछा, "आप पण्डा हैं?"

"जी, जी हाँ।" उनके नेत्र संभवत: चमके, "मैं कृपाराम हूँ। कुंजीराम

मेरा बेटा है।"

"पर साहब को आपकी जरूरत नहीं है।"

"जी हाँ। आप यह कागज रखिये।"

"मैं उन्हीं के साथ हूँ।"

"जी हाँ। मेरा प्रबन्ध ठेठ केदारनाथ तक है। मैं गुप्तकाशी के पास रहता हूँ।"

"पर हमें आपकी जरूरत नहीं है। हम लोग यात्रा पर नहीं, सरकारी काम से जा रहे हैं।"

"जी हाँ, मैं जानता हूँ। आप वहीं भी मेरा नाम पूछ सकते हैं।"

फिर सहसा उसी निर्लिप्त पर नाटकीय ढंग से संगम की ओर इशारा करके कहा, "यह मन्दाकिनी और अलकनन्दा का संगम है। पैड़ियों से ऊपर देवी का मन्दिर है। राजा गय के यज्ञ में परशुराम ने क्रुद्ध होकर दो लाख ब्राह्मणों को ब्रह्मराक्षस हो जाने का शाप दिया था। उसी शाप से वे यहाँ मुक्त हुए थे···"

तब तक मेरे साथी भी आ गये थे। पंडित कृपाराम ने शीघ्रता से प्रणाम को सलाम की मुद्रा में फेंका। साथी ने धीरे से कहा, "पंडितजी! आप हमारे लिए कष्ट न कीजिये।"

"जी हाँ। मैं बता रहा था कि यहाँ रुद्रेश्वर शिव का मन्दिर है।"

"मैं कहता हूँ, महाराज! हमें आपकी जरूरत नहीं है।"

"हुजूर! यह तो हमारा काम है। हम इसीलिए हैं कि यात्रियों की सेवा करें।"

"पर हम यात्री नहीं हैं।"

"जो यहाँ आता है वह यात्री है, हुजूर! और फिर हम सब इस संसार में यात्रा करने ही तो आते हैं।" उन्होंने कहा और छतरी उठाकर चलते-चलते बोले, "अच्छा, गुप्तकाशी में मिलूँगा। वहाँ धर्मशाला है···"

साथी ने बड़े परिश्रम से अपने को शान्त करते हुए कहा, "हमें न धर्मशाला की जरूरत है, न आपकी। आप कष्ट न कीजिए।"

मैंने भी साथी का समर्थन किया, "हमें खेद है कि हम आपकी सेवा का लाभ नहीं उठा सकते। आप किसी और को देखें।"

वे तब अपने उसी शाश्वत शान्त और अलिप्त भाव से मुड़े और चले गये। पीछे से उनकी दीर्घता और क्षीणता दोनों मुझ पर और भी स्पष्ट हो गईं। पर तभी मुझे ध्यान आया कि उनका मुद्रित पत्रक तो मेरे ही पास रह गया। साथी ने कहा, "चपरासी को दे दीजिये। दे आएगा।"

मैं कुछ सोचकर बोला, "यात्रा मे यह पत्रक बड़ा काम आएगा।"

"तो रख लीजिए," साथी ने अनमने भाव से कहा। उन्हे शायद भय था कि पत्रक पास रहा तो पण्डाजी की आत्मा को पास रहने का बहाना मिल जाएगा। और उनका वह यह डर सोलह आने ठीक निकला। तीन दिन बाद जब हम प्राणों को थका देने वाली चढ़ाई वाले उस भयंकर मार्ग पर पर्वतीय प्रदेशों की सुषमा और सौरभ को अन्तर मे संजोते हुए गुप्त-काशी पहुँचे तो क्या देखते हैं कि पंडित कृपाराम उसी निर्द्वन्द्व और अलिप्त मुद्रा मे मन्दिर के द्वार पर हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे साथी तिल-मिला उठे, बोले, "सीधे चलो! यहाँ नहीं रुकना है।"

पंडितजी ने यथावत् प्रणाम किया और फिर नारी दल की एकमात्र सदस्या भाभीजी की ओर मुड़कर कहा, "आइए! यह विश्वेश्वर का प्राचीन मन्दिर है। इसके आँगन मे मणिकर्णिका घाट है।"

उनका दुर्भाग्य। बी० ए० पास भाभीजी घोर नास्तिक निकलीं। बोलीं, "मैं जानती हूँ।"

"यहाँ गंगा-यमुना की धारा शिवजी के नीचे से आकर गिरती है।"

"मैंने सुना है।"

मैं उन्हे यह मधुर वार्तालाप करते छोड़कर शीघ्रता से मन्दिर के दूसरे द्वार की ओर मुड़ा जिससे कम से कम कुण्ड मे पड़ती हुई गंगा-यमुना की धारा को देख सकूँ, पर कृपाराम तो सर्वव्यापक थे। हमसे पूर्व ही वे अन्दर से होकर हमारे स्वागत को वहाँ उपस्थित थे। उनके हाथ मे बहुत-से पत्र थे। एक पत्र मेरे साथी की ओर बढ़ाकर कहा, "देखिए।"

"क्या है?"

"एक बड़े अफसर की चिट्ठी है।"

वह यात्रा पर जाने वाले एक सरकारी अफसर का पत्र था जिसमे लिखा था कि पंडित कृपाराम ने उन्हें मन्दिर दिखाये थे। साथी ने पढ़कर

उसे उन्हें ही लौटा दिया और आगे बढ़ गये। पंडित कृपाराम ने कहा, "रुकेंगे नहीं ?"

विनम्र भाव से साथी ने फिर उत्तर दिया, "हमें आपकी जरूरत नहीं है। आप व्यर्थ ही कष्ट उठा रहे हैं। समझे !"

"जी, समझ गया। गौरीकुण्ड पर दर्शन करूँगा।"

"क्या मतलब ?" साथी क्रुद्ध हो उठे।

"हुजूर ! हम तो सेवक हैं। यही काम करते हैं।"

हम बिना जवाब दिये आगे बढ़ गये। बढ़े चले गये। महिषमर्दिनी के उस प्रदेश (मैखण्ड) में अनेक तीर्थ आये। अनेक उन्मादिनी गंगाओं का आत्मसमर्पण देखा, ज्वार-भाटे की तरह चढ़े और उतरे, और इस तरह पहुँच गये गौरीकुण्ड। शीत बढ़ चला था और शरीर थककर चूर हो रहे थे। लेकिन कल की यात्रा का विचार हमारा सम्बल बना हुआ था। सात मील के मार्ग पर हमें ६,५०० फीट से ११,५०० फीट ऊपर चढ़ना था। साथी ने कुछ चिन्तित भाव से कहा, "वहाँ भयंकर शीत पड़ता है। और रहने के लिए कोई डाक-बंगला नहीं है।"

चपरासी ने बतलाया, "जी, धर्मशालाएँ हैं।"

"धर्मशालाएँ !" उन्होंने घृणा से भरकर कहा, "उनकी दीवारें थूक और पीक से रँगी रहती हैं।"

मैं बोला, "तो कोई और प्रबन्ध हो सकता है ?"

चपरासी झिझका, "जी, और तो वहाँ पण्डा लोग है।"

जैसे पण्डाजी सुन रहे थे। नीचे से आकर सामने खड़े हो गये। प्रणाम किया और बोले, "हुजूर ! मैं रात आ गया था। अभी जा रहा हूँ। आप कुछ चिन्ता न करें।"

साथी सकपकाये तो पर सहसा क्रुद्ध न हो सके। पूछा, "कहाँ जा रहे हो ?"

"केदारनाथ।"

"तो जाइए।"

"जी हाँ। वहाँ मैंने दो कमरे ठीक कर लिये हैं। दीवारें साफ करने को कह दिया है। नीचे कालीन बिछ जाएँगे। अँगीठी है। कोयले भी हो ही

जाएँगे। पूजा का शेष सामान मेरे पास है।"

"पर हमें···"

पंडित कृपाराम ने हाथ बाँधकर कहा, "आप कैलाश के अतिथि हैं और हम उसके सेवक। अतिथि की सेवा हमारा कर्तव्य है।"

और आगे बात न करके केदारनाथ के मार्ग पर आगे बढ़ते चले गये। मैं देखता ही रह गया। वही क्षीणकाय, दीर्घदेह, अलिप्त भाव, सकुचित नयन और लम्बे चरण। साथी ने कई क्षण बाद कहा, "बड़ा अजीब आदमी है।"

भाभीजी बोलीं, "जोंक है। एक बार चिपटकर इसने उतरना नहीं सीखा।"

मैंने मुसकराकर कहा, "उतरती तो है।"

"उतरती है पर खून पीकर।" भाभीजी उसी तरह बोलीं।

मैंने तर्क किया, "पर वह गन्दा खून होता है। उसका निकल जाना स्वास्थ्य के लिए हितकर है।"

और हम सब हँस पड़े। पर अगले दिन जब लम्बी चढ़ाई शुरू हुई तो प्राण विद्रोह करने को प्रस्तुत हो गये। एक सहयात्री ने बताया कि जब प्रथम बार थककर भगवान् इधर आये थे तो वे भी इतने थक गये थे कि उन्होंने अन्तिम भारस्वरूप लँगोटी भी उतार फेंकी थी। उसी दिन से इस चढ़ाई का नाम लँगोटिया चढ़ाई पड़ गया है। कथा झूठी हो सकती है पर उसके भाव की सचाई के लिए प्रमाण की जरूरत नहीं थी। उस पर हिम के भार से दबी हुई वायु चाकू की तरह चुभ रही थी। आकाश मेघों से आच्छादित था और पृथ्वी ठंडे कुहरे में लिपटी हुई थी। मन्दाकिनी का स्वर भी जैसे जमता आ रहा था और उसी के साथ हमारा रक्त भी। यदि चलने का प्रश्न न होता तो सम्भवतः हम भी शिलारूप हो जाते। मेरे साथी ने जो घुटनों पर हाथ रखते-रखते थक गये थे, एक दीर्घ निःश्वास खींची। कहा, "गजब की सर्दी है!"

मैं बोला, "सर्दी आगे है। अभी हम चल रहे हैं।"

पर आगे सर्दी जो थी वह तो थी ही, उसके साथ पंडित कृपाराम भी थे। सर्पाकार मार्ग को पार करके जैसे ही हमने उस नीरव निर्जन नगरी में प्रवेश किया तो देखा—एक मकान में से निकलकर भाव-विहीन लघु नयन-

धारी पंडित कृपाराम हाथ जोड़कर हमें प्रणाम कर रहे हैं। मेरे साथी को
जैसे ग्रीष्म ऋतु की वायु ने स्पर्श किया। बोले, "तो आप हैं।"

"हुजूर! कमरे तैयार हैं।"

"कहाँ?"

पंडित कृपाराम पहली बार कड़के, "ए कुली! उधर जो आदमी खड़ा
है वहाँ सामान ले चलो।"

"ऊपर।"

और फिर मुड़कर कहा, "चलिए हुजूर! सब ठीक है। गलीचे बिछे हैं।
अँगीठी तैयार है।"

और फिर ऊपर जाकर, न केवल उन्होंने बिस्तर खोल डाले बल्कि
अँगीठी में फूँक मारकर राख की सात तहों में दबी हुई आग को चेताने लगे।
सब उनकी स्फूर्ति देखने योग्य थी। जबकि ओवरकोट में से होकर शीत
हमारी हड्डियों को कँपा रहा था, वे एक ठंडा कोट पहने हमारी प्रत्येक
सम्भावित आज्ञा को पूर्ण करने के लिए तत्पर थे। मेरे साथी ने यह सब
देखकर कहा, "अद्भुत आदमी है।"

"जी नहीं।" मैंने कहा, "आदमी नहीं पण्डा है।"

"और पण्डे होते हैं जोंक।" भाभीजी बोलीं।

"और जोंक सदा गन्दा खून पीती है।" मैंने विनोद किया।

पर इससे पूर्व कि हम हँसें (हँसी जम जाने के कारण स्वत नहीं फूटती
थी), पंडित कृपारामजी दौड़े-दौड़े आये। बोले, "हुजूर! मन्दिर के पट खुल
रहे हैं। दर्शन के लिए चलिए।"

"दर्शन! इस शीत में! बाप रे! अब तो नास्तिक बनने में ही कल्याण
है।" साहब ने मुसकराकर कहा, "पंडितजी! चाय छोड़कर इस समय
बाहर जाना अच्छा नहीं लगता। दर्शन सवेरे करेंगे।"

"हाँ, हुजूर! यही ठीक रहेगा। बच्चे वहाँ जाएँगे! आप चिन्ता न
करें। मैं प्रसाद ले आऊँगा।'

और वे उसी तरह लौट गये। हम अभी चाय समाप्त भी नहीं कर पाये
थे कि एक पुड़िया में भभूत तथा दूसरी में कुछ इलायचीदाने लेकर वे फिर
आ पहुँचे। चाय छोड़कर हम उसी तरह हाथ जोड़कर बैठ गये और उस

प्रसाद को नेत्र मूंदकर ग्रहण किया।

वे चले गये तो मेरा मन न जाने कहाँ-कहाँ भटक गया—चिरतन हिम प्रदेशों की मह उत्तुग उपत्यका, शाश्वत शुभ्र हिम धवल मौन ज्योत्स्ना, शान्त नीरव निधि, एक साथ क्षुद्र और महान् मानव और पंडित कृपाराम —एक साथ प्रेम और हेय, एक साथ लघु और दीर्घ, एक साथ कीट और किरीट···

न जाने कब सो गया। आँखें खुली तो देखा—पंडित कृपाराम हाथ जोड़े खड़े हैं।

"आज्ञा, भगवन्!"

बोले, "चलिए।"

"कहाँ?"

"पूजन के लिए।"

सब हड़बड़ाकर उठे। प्रकृति-दर्शन, पवस्नानी, चायपान···उसके पश्चात् देवता की आराधना का नम्बर आया। नियमित व्यायाम करना पड़ा। यहाँ आइए, वहाँ बैठिए, इधर से परिक्रमा करिए, शिवलिंग का आलिंगन कीजिए, ये भैरव हैं, ये नन्दी हैं, ये गणेश हैं, ये पाण्डव हैं, जो श्रद्धा हो चढ़ाइए। सब राज्य को जाता है। कमेटी बनी है।···"

तब उनकी मुखरता देखते बनती थी। वे स्वामी थे, हम सेवक थे। वे कहते थे, हम करते थे। धीरे से कान मे बोले, "मन्दिर के पीछे एक स्वामी रहते हैं। तपस्वी हैं। श्रद्धा हो तो कुछ भेंट कर दीजिए।"

साहब ने आज्ञा का पालन किया।

"इस कुंड के जल से आचमन करने से पुनर्जन्म नहीं होता। लीजिए। हाँ-हाँ, झिझको मत। कैलाश की भूमि मे झूठ-सच का विचार नही होता।"

और सबने आचमन किया।

पंडित कृपाराम ने उसी निर्लिप्त भाव से आशीर्वाद दिया। बोले, "उधर कुछ कुण्ड और हैं।"

"उनका देखना आवश्यक है?"

"बिलकुल नहीं। और हजूर, मेरा कहना मानें तो ऊपर वासुकी ताल

प्यार की भाषा

उस दिन कम्बोदिया में सियमरियप के हवाई अड्डे पर उतरे तो पाया कि कजरारे बादल घिर आये हैं और वातावरण एक मादक गन्ध से महक उठा है। विदेशी नारियों का एक दल हमारे साथ ही अकोरवाट के विश्व-प्रसिद्ध मंदिर देखने आया है। उनका मार्गदर्शक बार-बार हमारे पास आकर अंग्रेजी में कहता है, "देखो, यह मेरा हरम है।"

मैं पूछता हूँ, "हरम का अर्थ जानते हो?"

आँखें मटकाकर वह उत्तर देता है, "क्यों नहीं, क्यों नहीं!"

मैं हँस पड़ता हूँ, "अच्छा, कहाँ ठहरोगे?"

अचरज से मेरी ओर देखकर वह कहता है, "क्यों? रायल होटल में ठहरेंगे। यहाँ वही एकमात्र ठहरने योग्य स्थान है।"

पैसा हो तो सब कुछ 'योग्य' है। पर हमारी जेब लगभग खाली है। और पैसा ही क्यों, यहाँ की भाषा भी हम नहीं जानते। जिस किसी से कुछ पूछते हैं तो वह बोल उठता है, 'फ्रेंच' अर्थात् फ्रेंच में बातें करो।"

इसी दुविधा में थे कि अचानक रायल होटल में एक भारतीय यहूदी से भेंट हो गई, जैसे जी उठे। स्नेहपूर्ण स्वर में उसने कहा, "गाँव में चले जाइए, वहाँ एक भारतीय की दुकान है। वह आपकी मदद कर सकेगा।"

उस भारतीय की चर्चा हमने भी सुनी थी, लेकिन उसका नाम कोई नहीं बता सका था। मालूम हुआ, वह यहीं पैदा हुआ है और तमिल के अतिरिक्त किसी दूसरी भारतीय भाषा से उसका परिचय नहीं है। हाँ, अंग्रेजी के कुछ शब्द उसे अवश्य याद हैं। मेरे साथी श्री यशपाल जैन ने तुरन्त कहा, "तब चलो, उसी से बातें करेंगे। आखिर भाषा केवल साधन है, साध्य नहीं।"

गाँव बहुत बड़ा नहीं है। छोटे-से बाजार के चारों ओर यात्रियों की

सुविधा के लिए ही मानो वह बस गया है। यहाँ के निवासी कौतूहल से हम देखते, विशेषकर हमारी पोशाक—धोती-कुर्ता, पाजामा और गांधी टोपी को। यह सब उनके लिए कौतुकागार की वस्तुएँ हैं। आपस में कुछ कहते हैं और हँस पड़ते हैं। हम भी हँस पड़ते हैं और आखिर उस भारतीय की दुकान पर पहुँच जाते हैं। पाते हैं कि वह बाहर ही खड़ा है। रिक्शा वाले के कुछ कहने से पूर्व ही उसकी आँखें चमक उठती हैं। वह बोल उठता है, "इंडिया।"

निमिष मात्र में मैं उसे देख जाता हूँ कि उमर ढल रही है, पर शरीर में कसावट शेष है। रंग श्याम है, पर नेत्रों का तरल-तेज ज्योति से पूर्ण है। यशपालजी तुरन्त धाराप्रवाह अंग्रेजी में बोलने लगते हैं। समझने में उसे कुछ दिक्कत होती है, पर वह कुछ कहता नहीं है। मुसकराकर अपने सेवक को पुकारता है और बहुत देर तक स्थानीय भाषा में बातें करता है। सेवक सिर झुकाकर चला जाता है तो वह हमारी ओर मुड़ता है, 'यू काफी?"

हम दोनों ने एक-दूसरे को देखा। फिर उसको देखा, कुछ समझ में नहीं आया। मैं अचानक ऐसे ही बोल उठा, "हमने अभी तक काफी नहीं पी है।"

वह हँसा और बोला, "आई एम काफी।"

हमने फिर एक-दूसरे को देखा। वह तुरन्त अन्दर चला गया, तब मैंने एक दृष्टि उस छोटी-सी बस्ती पर डाली और अपने साथी से कहा, 'हमारे देश के छोटे कस्बे-जैसी बस्ती है। अत्यन्त साधारण, लेकिन बरसात के इस मादक मौसम में कितनी प्यारी लगती है।"

यशपालजी कुछ कहते कि अन्दर से आवाज आई, "कम बैक।"

एक और नया शब्द। हम अन्दर जाकर एक तख्त पर बैठ गये। रोतन नाम की एक घास से बनाये हुए नाना प्रकार के सामान से वह दुकान भरी थी। यात्रियों के योग्य कुछ और चीजें भी थीं, पर जैसे भीड़ लगी हुई हो, सुघड़ता कुछ कम ही थी। सहसा एक बिल्ली अपने शरीर को कमानी के समान मोड़ती हुई मेरे पैरों से सटकर खड़ी हो गई और पीठ रगड़ने लगी। उसे थपथपाते हुए मैंने कहा, "लो, सगुन तो अच्छा हुआ। काफी भी आ गई।"

वह दो प्याले हाथ में लिये हुए बाहर आ चुका था और उसी तरह

मुसकरा रहा था। हमने उसे बहुत धन्यवाद दिया। सचमुच हम तब असीम सुख से भर उठे थे। कॉफी की एक-एक घूंट जैसे हमारे अन्तर में प्यार उँडेल रही हो। तभी एक व्यक्ति वहाँ आया और देर तक उससे बातें करता रहा। फिर हमसे कहा, "गो, चीप होटल, वुवड रूम।"

तब तक हम बहुत कुछ समझ चुके थे। पता लगा कि पास ही एक होटल है। वहाँ एक बिस्तर के कमरे के, दो रात के लिए, टैक्स-सहित २५० रीयल अर्थात् लगभग ३२ रुपये देने होंगे। यह विशेष रूप से हमारे लिए है। उसने मुसकराकर कहा, "यू टू फिफ्टी, अदर थ्री फिफ्टी। फूड आइ एम।"

कुछ देर पहले जहाँ घोर अन्धकार था, वहाँ प्रकाश उमड़-उमड़ आने लगा। होटल में जाकर देखा, कमरा साफ-सुथरा है और पलंग पति-पत्नी के लिए है। न सही पति-पत्नी, पर हैं तो दो। उस पर पैसे का अभाव, इसीलिए उसी को स्वीकार करना पड़ा। वहाँ के अधिकारी हमारी एक भी बात नहीं समझते थे। बस सिर झुकाकर बार-बार अभ्यर्थना करते और इशारे से हमारी बातों का जवाब देते। हाथ-मुँह धोकर बैठे थे कि पीने के लिए चाय का उबला पानी आ गया। न दूध, न शक्कर। शायद यहाँ पर ऐसा ही पानी पिया जाता है।

हमें अकोरवाट जाने की उतावली है। आकाश में सुरमई घटा गहरी हो आयी है और वर्षा की अगवानी बड़ी प्यारी लगती है। लेकिन हम बेसरोसामान मुसाफिर इस प्यार को कहाँ सँजोएँ, इसीलिए तुरन्त रिक्शा की तलाश में निकल पड़ते हैं। दुकान पर पहुँचते ही क्या देखते हैं, एक रिक्शा लिये वह बन्धु हमारी राह देख रहे हैं। एकदम बोले, "फूड आइ एम, कम बैक।"

अन्दर जाने पर देखा। मेज पर चावल और गरम-गरम साग मौजूद हैं। हमने फिर एक-दूसरे को देखा। उसका नाम पी० ए० तिरुपति चेट्टियार है। उसने कहा, "हरी, रिटर्न्ड फाइव, रेन।" अर्थात् जल्दी करो, पाँच बजे तक लौट आना, फिर बारिश आ जाएगी।

कहने में देर लगती है। समय और सामर्थ्य भी नहीं है। हो भी तो इस अटपटे स्नेह को, इस सहज स्वागत को भाषा में कैसे व्यक्त किया जाये

और वहाँ माया थी भी कहाँ । वह 'छुट' शब्द ही बोलता था, लेकिन यही 'छुट' शब्द हमें स्नेह के अथाह सागर में डुबोये दे रहे थे । उसी स्नेह के कारण अंकोरवाट, बेयोन, बेन्तेआई-स्री और बेन्ताई-स्रे की प्रस्तर प्रतिमाएँ अद्भुत रूप से सजीव हो उठीं । रामायण-महाभारत के पौराणिक नर-नारी, पुराणों के अलौकिक पात्र, नृत्यरत अप्सराएँ, अवलोकितेश्वर और तथागत बुद्ध, तत्कालीन कम्बोज के नागरिक—सभी हमारे हो गये । हममें आत्मसात हो गये । देखते-देखते मन और आँखें कहती हैं, मानो कम्बोज के वे कजरारे मेघ, वे गगनगामी खंडहर, वो गम्भीर प्रकृति के प्रतीक और मीनांग नदी के क्रोध के साक्षी हैं, जिन्होंने वेद्दियार के उस अविरल तरल स्नेह में डूबकर पुनर्जीवित हो उठे हैं ।

लेकिन वेद्दियार तो परम शान्त था, न उद्वेग, न दम्भ का प्रदर्शन । बस बातों का अटपटा क्रम और आँखों से बहती स्नेह की अजस्र धारा, जो करता था कि बस उसी की ओर देखता रहूँ । उसने अपनी टूटी-फूटी भाषा में खंडहरों की कहानी सुनायी, भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री और दूसरे विशिष्ट व्यक्तियों की यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया । चित्रों की मंजूषा दिखाई । मेडल, सनद, मानपत्र सब कुछ अपनी [illegible] की सी सरलता से हमारे सामने रख दिये । बताया, कैसे उसने राष्ट्रपति के लिए भोजन और प्रधान मन्त्री के लिए चाय का प्रबन्ध किया । फ्रेंच सरकार और वर्तमान कम्बोज राज्य ने उसकी वीरता और ईमानदारी से प्रभावित होकर उसे मेडल दिये ।

राजेन्द्र बाबू वेरी वेरी गुड आई एम । जवाहरलाल नेहरू वेरी गुड मी आई एम—ये अटपटे वाक्य भुलाये नहीं भूलते ।

उसकी दो पत्नियाँ हैं । एक तमिल, जो आज भी अपनी पुत्री के साथ भारत में रहती है । एक कम्बोज, जो अपनी [illegible] उस समय कहीं गई हुई थी । पहली पत्नी से एक पुत्र भी है, जो कम्बोडिया में ही व्यापार करता है । इस सारे वर्णन में दो बातें जैसे दो दूरी के [illegible] । [illegible] में उसका नियमित व्यापार चलता था । कम्बोज [illegible] और दूसरे रोतन की बनी टोकरियाँ और दूसरे साज-सामान [illegible] आतीं और काफी तर्क-वितर्क के बाद, [illegible]

[illegible]

लेकर ४० रीयल तक मे अर्थात् ४-५ रुपये मे, उसे सौंप जाती। पैसे लेकर प्रथा के अनुसार वे घुटने टेकतीं और उसे प्रणाम करती। इस व्यापार के बीच मे एक क्षण के लिए भी हमारी छोटी-से-छोटी बात उसके ध्यान से नही चूकती। दूसरे दिन जब हम कुछ और भारतीयों के साथ वैन्ताई-स्त्रे के अद्भुत मन्दिर देखकर लौटे तो वह हमे ऊपर ले गया। वह विशाल कमरा सामान से भरा था, लेकिन बीच मे एक छोटा सा पूजागृह था, जिसकी एक-एक मूर्ति अद्भुत और अनमोल थी। देखकर चकित हो जाये। लेकिन हमे तो तुरन्त वापस जाना था। इसलिए अधिक जानने की इच्छा का दमन करना पड़ा। सवेरे जब विदा का समय आया तो चेट्टियार बोल उठा, "टाइगर कब गोट लुक।"

कुछ समझ मे नही आया। तब तक कपड़ो की अलमारी मे वह कुछ ढूँढने लगा था। सोचा—शायद चाबी निकाल रहा है। पर दो क्षण बाद हम चौंक पड़े। देखा, चेट्टियार के हाथ मे चाबी के स्थान पर चीते का छोटा-सा जीता-जागता बच्चा है। बिल्ली के बच्चे जैसा निरीह, निर्दोष और प्यारा प्यारा। बच्चे किसी के भी हो, प्यारे ही होते हैं। यशपालजी ने हँसते हुए पूछा, "इसे कहाँ से ले आए?"

चेट्टियार ने कहा, "फोरेस्ट गोट।"

मैंने कहा, "इसे खिलाते क्या हो?"

चेट्टियार बोला, "कैट मिल्क, टू चाइल्ड हर, थ्री दिस, कैट नो आबजेक्शन, लव।" अर्थात—बिल्ली का दूध पीता है, दो उसके अपने बच्चे हैं, तीसरा यह है। उसे कोई आपत्ति नही है। प्यार करती है।

और वह हँस पड़ा। हम भी हँस पड़े। और हाथ जोड़कर कहा, "अच्छा, अब चलते हैं।"

कॉफी तैयार थी। उसने तुरन्त दो प्याले मेज पर ला रखे। पैसों के सम्बन्ध मे उसने कैसे हमारी सहायता की, इसकी चर्चा करके उसका महत्त्व नही घटाना चाहता। किस प्रकार उसने कम्बोज की प्राचीन भारतीय संस्कृति और स्थानीय रीति रिवाजो के बारे मे हमे जानकारी दी, वह सब भी यहाँ अप्रासंगिक है। इतना ही कहूँगा कि जब हम रिक्शा मे बैठे तो उसकी काली चमकदार पुतलियाँ पानी मे तैर रही थी। हमारे दिल भीग

आये। आज भी वे पुतलियाँ रह-रहकर हृदय में चमक उठती हैं तो मन का कलुष, क्षण भर को सही, धुल-पुंछ जाता है। चलने लगे तो दो पत्र हमें देते हुए वह बोला, 'फनोम्पन, सेगाँव, फ्रेंड्स, नो डिफिकल्टी फूड, प्लेस, एवरी थिंग। गो इंडिया, रोट लेटर, राष्ट्रपति नमस्कार।" अर्थात्—नोम्पन और सेगाँव में मित्र हैं, कोई कष्ट नहीं होगा। भोजन, स्थान, सभी का प्रबन्ध हो जायेगा। भारत जाकर पत्र लिखना। राष्ट्रपति को नमस्कार कहना।

उससे विदा लेना अपने से विदा लेने जैसा था। यशपालजी ने कृतज्ञता के कुछ शब्द कहे तो उसने उत्तर दिया,"हिन्दू, मुस्लिम, चीनी, कम्बोदियन, थाई, इंग्लिशमैन मैन मैन।"

इसके बाद भी कहने को कुछ रहता है क्या ! रिक्शा चल पड़ी और धीरे धीरे वह मूर्ति मन, नेत्र सब कुछ को घेरकर अन्तर में उतर चली। अब भी जब कभी उसका स्मरण आता है तो वह तरल श्यामल मूर्ति सामने आ खड़ी होती है और कहती है, 'फूड आइ एम।' –

मैं सुनता हूँ जैसे वह कह रहा है—'लव आइ एम' अर्थात्—प्रेम मैं हूँ, भाषा नहीं। और 'मैन मैन' अर्थात्—आदमी आदमी है, इंग्लिशमैन, हिन्दुस्तानी, कम्बोदियन, थाई नहीं।

विश्व-शान्ति के दूत

रे साथी ने अतिथि-भवन की दूसरी मंजिल पर एक कमरे के आगे खड़े ए एक स्थूलकाय व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए कहा, 'ये हैं डा० रडेकाई जान्सन (नीग्रो), हार्वर्ड विश्वविद्यालय के अध्यक्ष।" यद्यपि मैं न्हें स्पष्ट नहीं देख पा रहा था तो भी मुझे मित्र की बात पर विश्वास हीं हुआ। मैंने कहा, "क्या ये भी नीग्रो हैं।"

"निस्सदेह," मित्र बोले, "ये नीग्रो हैं, पर गोरे नीग्रो।"

वास्तव में डा० जान्सन नीग्रो हैं, नीग्रो जाति के नेता और हार्वर्ड श्वविद्यालय के सर्वेसर्वा। देखने में प्रभावशाली, विद्वान् और विनम्र ान पड़ते थे। शरीर का रुझान मोटेपन की ओर था। उनकी नाक और ोठ उनके नीग्रो होने का प्रबल प्रमाण थे। बोलते समय वे शब्दों के साथ ारीर से पूरी सहायता लेते थे। उनके स्वभाव में तनिक भी तेजी नहीं थी। द्यपि वे सेवाग्राम में बहुत व्यस्त थे, जैसा कि वहाँ प्रत्येक व्यक्ति था, तो भी वे एक बार बहुत देर तक हम लोगों से बातें करते रहे। वे सेवाग्राम की सादगी और कार्यकुशलता से अत्यधिक प्रभावित थे और उनकी प्रशंसा रते नहीं थकते थे। उन्होंने हमसे कहा, "आपका आन्दोलन नीचे से उठा है। उसके द्वारा आप आदर्श समाज का निर्माण कर सकते हैं। आपके गाँव सुरक्षित हैं। अगर भगवान कुछ अच्छा करना चाहता है तो वह आपकी ग्रामीण जनता को सुरक्षित रखेगा। कहीं भी आप ऐसे ग्रामीण जन नहीं देखेंगे। पश्चिम के पास बुद्धि है, प्रतिभा है, पर हृदय नहीं है, श्रद्धा नहीं है। यहाँ प्रेम करने वाले हैं, एक दूसरे की पीड़ा बटाने वाले हैं।"

गाधीजी के वे बहुत बड़े प्रशंसक थे। कामर्स कालेज में बोलते हुए उन्होंने कहा था, 'भारत ऊपर से नहीं बोलता, हृदय से बोलता है। टैगोर की 'गीतांजलि' सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। उसमें आन्तरिक दृष्टि है। आध्यात्मिक

जीवन है। महात्मा गांधी इसलिए बड़े नहीं थे कि उन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराया, बल्कि इसलिए बड़े थे कि जो राजनीति, जो अर्थशास्त्र हवा में उड़ता फिरता था, उसे वे धरती पर ले आये।" सेवाग्राम के जीवन के बारे में उन्होंने कहा, "दस सात दिन की यात्रा से हम लोगों ने सेवाग्राम से बहुत-सी बातें सीखीं, जो कि दुनिया के किसी भी साहित्य में नहीं मिल सकतीं। आश्रम की प्रार्थना से हमारे हृदय ऊँचे उठे हैं और मैं समझता हूँ कि अलौकिक हार्दिक आनन्द को हम सबको अपने देशों में जाकर दूसरे लोगों के सामने प्रकट करना चाहिए।"

अमेरिका से आने वाले दूसरे शांतिवादियों में कुछ लम्बे और पतले श्री रिचार्ड ग्रेग का नाम भारतवासियों के लिए नया नहीं है। चौंसठ वर्ष की उम्र में उनकी स्फूर्ति अद्भुत है। दूर से देखने पर एक बार हमें नेहरू का भ्रम हो गया था। उन्होंने खद्दर की धोती कुरता, जवाहर जाकेट और गांधी टोपी पहनी थी। हलकी झुर्रियों वाले उनके लाल मुँह पर सरलता और विनम्रता स्पष्ट अंकित थी। उनकी कमर कुछ झुक आयी थी। वे दूसरे की बात को बड़े ध्यान से सुनते थे और फिर एक स्नेही मित्र की भाँति अपनी बात कहते थे। इतनी व्यस्तता के बीच भी उन्होंने 'जीवन-साहित्य' के सम्पादक को एक लेख लिखाने का समय निकाल ही लिया। वे यहाँ १९२५ से १९२८ तक रह चुके हैं। वे गांधीजी के भक्त और मित्र हैं। कई महीने साबरमती आश्रम में भी रहे हैं। प्रसिद्ध डांडी-यात्रा के कुछ पहले भी वे साबरमती गये थे। उन्होंने 'खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र', 'अहिंसा की शक्ति' आदि अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

एक और प्रतिनिधि, जो प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर खींचते थे, श्री डोनाल्ड ग्रूम थे। वे खाकी कुरता और पाजामा पहनते थे। वे मझोले कद के और भूरे बालों के स्वस्थ व्यक्ति हैं और दस वर्ष से उन्होंने भारत को अपना घर बना लिया है। उनकी पत्नी उनसे भी सादी हैं और उनकी सप्तवर्षीय पुत्री हेलेन, जिसका भारतीय नाम मधु है तथा पुत्र ओब्राइन हिन्दी बोलते हैं। वे लोग होशंगाबाद के पास रसूलिया में ग्रामीणों के बीच रहते हैं। वे महात्मा गांधी के परम भक्त हैं और १९४२ में भारत सरकार ने उन्हें देशनिकाले का दंड देने का विचार किया था। उन्होंने

'नागपुर टाइम्स' के प्रतिनिधि से कहा था, "मैं भारत मे, गाधी के भारत मे, रहना अपना विशेषाधिकार समझता हूँ और उससे भी अधिक आज सेवाग्राम मे होना मेरे लिए बहुत बडी बात है।"

सम्मेलन के खुले अधिवेशन के अवसर पर भारतीय प्रतिनिधि श्री गुरुदयाल मल्लिक ने हमे दो और विशिष्ट प्रतिनिधियो का परिचय दिया था। वे थे फिनलैंड के श्री यारजो कालीनेन तथा स्वीडन के श्री स्वेन एरिक राइबर्ग। श्री यारजो कालीनेन आजीवन शान्तिवादी रहे है। वे अपने देश की शिक्षा मे बहुत दिलचस्पी लेते रहे हैं। वे युद्ध-मत्री (१९४६-४८) भी रहे है। पिछले युद्ध के बाद उन्होने ही सेना का मुक्त करके नागरिक धन्धो में लगाया था। उन्होंने विरोधियों की कभी चिन्ता नही की और सकीर्ण राष्ट्रीयता तथा युद्ध का वाणी तथा लेखनी द्वारा सदा विरोध किया। उन्हे हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म तथा ताओ धर्म से विशेष रुचि रही है और इन विषयो पर उनके पास सैकडो पुस्तकें हैं। सेवाग्राम मे रहते हुए ही उन्हें सूचना मिली कि उनकी सरकार ने उन्हें एक विशेष सम्मान 'The Order of the Commander of the White Rose' प्रदान किया है। तब एक छोटी बालिका ने उनके इस सम्मान के उपलक्ष्य मे आयोजित एक छोटे-से सुन्दर समारोह म गुलाब का एक श्वेत पुष्प भेंट किया। इस पर श्री कालीनेन ने कहा कि उस बच्ची के उपहार से मूल्यवान सौगात और कुछ नहीं हो सकती! उनकी आयु इस समय लगभग ६४ वर्ष की है। इसके विपरीत श्री राइबर्ग अभी कुल ३३ वर्ष के हैं, लेकिन उनका चरित्र उतना ही दृढ है। वे पहले चित्रकार थे और सिनेमा आदि के लिए काम करते थे, पर जब उन्हे यह मालूम हुआ कि उनके काम का उपयोग युद्ध के लिए हो रहा है तो उन्होंने वह काम छोड दिया और पत्नी-सहित बागबानी करने लगे। मैं शान्ति के लिए काम करने वाली अनेक सस्थाओ के सदस्य हैं। उन्हें जब भारत आने पर बबई मे ताजमहल होटल मे ठहराने ले जाया गया तो वे कई क्षण उस चकाचौंध को देखते रहे, फिर बैग उठाकर चल दिये। "मैं भारत को देखने आया हूँ और यह भारत नही है।" और वे एक साधारण स्थिति के व्यक्ति के साथ जाकर रहे।

युद्ध-विरोधी व्यक्तियो मे न्यूज़ीलैंड के श्री ए० सी० बॅरिंटन प्रमुख

थे। वे किंचित् भूरे बालों वाले सुन्दर और लम्बे युवक हैं। आयु ४४ वर्ष से कम ही है। वे प्राइमरी शिक्षा म आगे नहीं बढे, पर फिर भी अनेक मजदूर और शिक्षा-सस्थाओ मे भाग लेते रहे हैं। उन्होंने शान्ति-समितियों मे क्रियात्मक रूप से युद्ध का विरोध किया है और उसके लिए वे पाँच बार जेल गये, तीन बार निवृत्त सैनिको द्वारा शहर से निकाले गये, अनेक बार उनके घर पर धावा बोला गया, जुर्माना हुआ, कागज जब्त हुए, पर वे दृढ़ रहे। वे अन्तिम बार जुलाई १९४९ मे युद्ध-शिक्षा का विरोध करने पर पकड़े गये थे। उन्होंने अपना बचाव आप किया था और वे सफल भी हुए थे। उन्हें सेना की नौकरी से बिना शर्त छूट मिल गई थी। उन्हें अपने देश पर इस बात का गर्व है कि वहाँ मनुष्य अभाव से पीडित नहीं हैं। उसके विपरीत दक्षिणी अमेरिका और भारत आदि देशो मे लोग पेटभर भोजन भी नहीं पा सकते। ये ही बातें तो युद्ध, घृणा और शोषण को जन्म देती हैं। शान्तिवादियो को इस शोषण का गाधीमार्ग से निराकरण करना चाहिये।

डा० डेविडसन जबाबू डा० जान्सन की भाँति नीग्रो हैं। कुछ मोटे भी हैं, पर उनका रग काला है। वे पैंसठ वर्ष की आयु के अवकाशप्राप्त प्रोफेसर हैं। उन्होंने अनक पुस्तकें लिखी हैं और अनेक सस्थाओं की स्थापना की है। पर जैसा कि उन्होंने हम बताया, उनके देश मे कोई शान्तिवादी सस्था नहीं है। हाँ, कुछ क्वेकर अवश्य हैं। उन्होंने कहा, "हम शान्ति की खोज म यहाँ आये हैं। भारत ने जिस प्रकार सबम पहले सस्कृति और शिक्षा की खोज की थी, उसी प्रकार उसने शान्ति को खोज लिया है।" उनके सिर पर सफेद गाधी टोपी बडी भव्य लगती थी और अपनी चाल से [illegible]

इकसठ [illegible]

इजीनियर हैं।

महायुद्ध मे जब नाजी लोग उनके देश को कुचल रहे थे तब वे जनता को अहिंसा के द्वारा क्रियाशील और वीर बने रहने की प्रेरणा दे रहे थे। वे नाजियों द्वारा बन्दी बना लिये गये थे, पर बाद म उन्हें मित्रों के कहने पर नार्वे छोडना पडा था। वे बहुत दिन तक इंग्लैंड में रहे, यद्यपि उनका [illegible]

नजरबन्द-कैम्प मे था, पर वे सदा इस बात पर जोर देते रहे कि अवसर आने पर हमे जर्मन लोगो को अच्छा यूरोपियन बनना सिखाने का मार्ग खोजना चाहिए। उन्होंने पीड़ित जर्मनो की सहायता भी की है। उन्होंने गांधीजी की पुस्तकें पढ़ी हैं। यद्यपि वे बहुत सी संस्थाओ के सदस्य हैं तो भी इस सम्मेलन मे व्यक्तिगत रूप से आये थे। वे भारत के स्वागत से बहुत प्रभावित थे और उनकी बातो से जान पड़ा, वे भारत म शान्तिवादियो मे प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन करना चाहते थे। स्वयं वे प्रबल युद्ध विरोधी हैं।

एक दिन रात के समय जब हम बापू की कुटिया के पास से जा रहे थे तो हमने चीन के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री और सुधारक प्रो० लॅग की कुटिया की पैड़ियों पर इस प्रकार लेटे देखा, जैसे पुत्र माँ की गोद में लेटता है। मुक्त, निर्द्वन्द्व और शांत। उनसे बातें की तो लगा, जैसे हमने उनका कोई सपना भग कर दिया है। उन्होंने बताया कि उन्हें यहाँ बहुत शांति मिलती है और वे जैसे यही बैठे रहना चाहते हैं। वे चीनी कोटे वस्त्रो और दाढी में बहुत शात प्रकृति के व्यक्ति जान पड़े। वे सुशिक्षित और सम्भ्रान्त कुल से सम्बन्ध रखते हैं और उनके पिता व पितामह आदि राजदूत जैसे पदो पर रह चुके हैं। उनके एक पूर्वज कन्फ्यूशस के भक्त और साथी थे, दूसरे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और योद्धा हो गये हैं। जापान से युद्ध के समय उन्होंने अपने गाँव को आत्मसमर्पण से रोका था, परन्तु बन्दी जापानियो के प्रति वे सदा उदार रहे हैं। वे सच्चे ईसाई हैं, पर उनका रुझान समाजवाद की ओर है। सम्मेलन की एक बैठक मे उन्होंने कहा था कि यह सम्भव है कि साम्यवाद भी चीन मे अपना एक मार्ग बना ले। वे अच्छे वक्ता हैं और उनकी आयु लगभग ५५ वर्ष की है।

फिलिपाइन के शांतिदूत श्री लोरेंजो श्रोस्तिस्ते प्रथम दृष्टि मे ही स्वस्थ, प्रभावशाली और गम्भीर जान पड़ते हैं। वे कद के छोटे थे और पाजामा-कमीज पहने हुए थे। उनकी कमीज भारतीय कुरते की तरह कफ कालर-सहित शरीर से चिपकी हुई थी। मनीला टाउन हाल के सभापति और राष्ट्रवादी हैं। वे अपनी प्रत्येक बातचीत, प्रत्येक भाषण मे फिलिपाइन की आर्थिक दासता का रोना रोते थे। उन्होंने गम्भीर होकर कहा था कि जो

देश आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से परतन्त्र है, वह किसी भी तरह स्वतन्त्र नहीं है। अमेरिका आज उनके देश के बाजारों का स्वामी है। वे शांति-सम्मेलन में यह देखने आये थे कि गांधीजी की शिक्षाओं को किस तरह उनके देश में काम में लाया जा सकता है। वे आजकल दक्षिण एशिया के देशों में गैरसरकारी राजदूत के रूप में घूम रहे हैं।

अमेरिका के प्रसिद्ध शांतिवादी रेवरेन्ड जान नेविन सायरे सपत्नीक पधारे थे। वस्तुतः वे विश्व-यात्रा कर रहे हैं। श्री सायरे विश्व-सरकार के समर्थक हैं। उनकी आयु लगभग ६३ वर्ष की है और १९२० से वे 'फेलोशिप आव रीकन्सीलियेशन' में काम कर रहे हैं। तीन वर्ष तक वे राष्ट्रीय शांति-सम्मेलन के प्रधान रहे हैं। वे नीग्रो समस्या का हल करने का प्रयत्न कर रहे हैं। शांति सम्बन्धी भाषण-यात्रा के सम्बन्ध में वे चौदह बार यूरोप, दो बार रूस तथा मध्य और दक्षिण अमेरिका के पन्द्रह देशों में हो आये हैं। अभी वे होनोलूलू, फिलिपाइन, जापान और स्याम होकर आये हैं। उनकी पत्नी श्री कैथलीन सायरे लगभग उन्हीं की आयु की हैं। वे भी 'फेलोशिप आव रीकन्सीलियेशन' से सम्बन्धित हैं। आजकल पति के साथ यात्रा पर हैं और स्थानीय शांति-कार्य के संगठन में दिलचस्पी लेती हैं।

'फेलोशिप आव रीकन्सीलियेशन' के एक और अग्रगण्य नेता हैं श्री ए० जे० मस्टे। वे प्रसिद्ध लेखक हैं। वे किसी समय ट्रॉट्स्की के भक्तों की पार्टी में रहे हैं और मजदूरों के लिए बहुत काम किया है। वे दूसरे विश्वयुद्ध में सैद्धांतिक युद्ध-विरोधी थे। उनका विचार है कि शांति-वादियों को साम्यवादियों को भी मनुष्य समझना चाहिए और उनकी भाषण तथा संगठन की स्वतन्त्रता का समर्थन करना चाहिए। वे मूलतः डच हैं और उनकी आयु लगभग चौंसठ वर्ष की है।

ईरान के प्रतिनिधि श्री सईद नफीसी प्रसिद्ध प्रोफेसर और शिक्षा-शास्त्री हैं। वे पहले ईरानी हैं, जिन्होंने उपन्यास लिखे हैं। उनकी ७० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और लगभग १२० पुस्तकें तैयार हैं। आलोचना, जीवनी, इतिहास, कथा और वाणिज्य सभी विषयों पर वे लिख सकते हैं। महात्मा गांधी की शिक्षा से वे बड़े प्रभावित हैं। उनका विचार है कि

महात्मा गांधी ही ऐसे नेता थे, जिन्होंने विध्वसात्मक के बजाय रचनात्मक दर्शन का प्रतिपादन किया था।

श्री नफीसी की तरह मिस्र के प्रतिनिधि श्री एच० हसन भी काहिरा विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। वे प्रतिदिन गांधी जी की कुटिया पर जाते थे। उनका विचार था कि मिस्र में भी अगर एक गांधी पैदा हो जाता तो वहाँ की अवस्था बदल जाती। उनका कहना था कि मिस्र में आज भी अनेक मुसलमान गांधी जी के भक्त और प्रशंसक हैं।

चीन के श्री सेंग का वर्णन ऊपर आ चुका है। उनके साथ उनकी बहन कुमारी सेंग भी आयी थी। वे उच्च शिक्षा प्राप्त प्रतिभा-सम्पन्न महिला हैं। वे धर्म से ईसाई हैं, पर किसी पार्टी से सम्बन्ध नहीं रखतीं। अपने देश की नारी-शिक्षा में उन्हें बहुत दिलचस्पी है। वे प्रसिद्ध लेखिका और भाषण देने वाली हैं। वे राष्ट्रीय धारा सभा की सदस्या भी थी।

चीन के किसी समय के प्रतिद्वन्द्वी युद्ध प्रिय जापान से भी तीन प्रतिनिधि आये थे। उनमें श्री सेकिया १६०३ में एक ईसाई माँ और गैर-ईसाई पिता से उत्पन्न हुए थे। वे गांधी जी से मिल चुके हैं। उस समय वे इंग्लैंड में शिक्षा पा रहे थे। वे पढ़ाई में पढ़ाते समय क्वेकर सम्प्रदाय के सम्पर्क में आये और १६४८ में टोकियो में जापानी क्वेकर ग्रुप में शामिल हो गये। उनके साथी पचहत्तर वर्षीय श्री रिरि नाकायामा बौद्ध हैं। वे तोजो और मैकआर्थर, दोनों के आलोचक रहे हैं। इसके लिए उन्हें अनेक बार चेतावनी मिली थी और अन्त में १६४७ में उन्हें पत्र से हटना पड़ा था। वे गांधी सोसायटी के डायरेक्टर हैं और बौद्ध होते हुए भी उन्होंने १६४५ में पोप से युद्ध में मध्यस्थता करने का सुझाव दिया था। सेवाग्राम में उन्होंने सम्मेलन से पूर्व सात दिन का उपवास किया था। जापान की तीसरी प्रतिनिधि एक महिला श्रीमती डा० कोरा थी। वे कोलम्बिया विश्वविद्यालय की डाक्टर हैं और पन्द्रह वर्ष तक निपन नारी विश्वविद्यालय की प्रोफेसर रही हैं। शान्ति-कार्य के सम्बन्ध में वे दो बार चीन गई थीं और भारत आकर गांधी जी तथा गुरुदेव से मिल चुकी हैं। जापानी अपर हाउस की सदस्या हैं। उन्होंने जापानी भाषा में गांधी जी की जीवनी तथा गुरुदेव के दर्शन पर पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने हमें बताया था कि वे एक वर्ष की छुट्टी पर आई

हैं। मैकआर्थर के राज्य में जापान स्वतंत्र नहीं है। दूसरे लोग तो कुछ ही छपने के लिए आ सके हैं। ये सुन्दर वक्ता हैं और जापान की वर्तमान दुर्दशा का वर्णन करते हुए भी उसके भविष्य में विश्वास करती हैं। जापान के एफ० ओ० आर० की वाइस-चेयरमैन हैं।

बर्मा के प्रतिनिधि यू० विन कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम० ए० तथा रंगून विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रोफेसर हैं। १९३६ से सरकारी पुरातत्त्व विशारद हैं। बौद्ध हैं। आयु लगभग ४९ वर्ष की है। आजकल माउले रोटरी क्लब के सभापति हैं।

मलाया के तीन प्रतिनिधियों में हिन्दू सन्यासी स्वामी सत्यानन्द को तो सेवाग्राम सम्मेलन से पूर्व ही लौट जाना पड़ा था। वैसे वे मार्च १९४९ में एशियन रिलेशन्स कान्फरेन्स में आये थे। श्री अब्दुल रज़्ज़ाक एक पत्रकार और विश्वास से शान्तिवादी हैं। आयु ३५ वर्ष की है। तीसरे प्रतिनिधि श्री लिमौंग चीनी हैं। ४९ वर्ष के ये चीनी लेखक, समाज-सुधारक तथा मलाया में विश्वभ्रातृत्व-आन्दोलन के संस्थापक हैं।

इस सम्मेलन में सबसे अधिक प्रतिनिधि आये थे अमेरिका से। श्री ग्रेग और डॉ० जान्सन आदि का वर्णन ऊपर आ चुका है। इनके अतिरिक्त श्री टी० केल, जिनकी आयु लगभग ३४ वर्ष की है, अपने विद्यार्थी जीवन के दिनों से ही युद्ध-विरोधी, शान्तिवादी और समाजवादी रहे हैं। मानव एकता के विश्वासी हैं। ये 'फेलोशिप आव रीकन्सीलियेशन' के तत्त्वावधान में दक्षिण में शान्ति और जाति-समस्या के सम्बन्ध में काम करते रहे हैं। शिक्षित और धार्मिक (क्वेकर) व्यक्ति हैं। यूरोप घूम चुके हैं और आजकल 'अमेरिकन फ्रेंड्स सर्विस कमेटी' के मंत्री हैं। श्री पाल एक प्रसिद्ध अध्यापक और सम्पादक हैं। उनका सम्बन्ध अनेक संस्थाओं से है और वे कई पुस्तकों के लेखक हैं। मैनोनाइट चर्च के सम्बन्ध में बहुत यात्रा और भाषण कर चुके हैं। भारत भी इसी सम्बन्ध में धमतरी-परिषद् में आये थे। श्रीमती बेसी सी मार्क्स भी क्वेकर हैं। ५० वर्ष की यह नारी आरम्भ से ही युद्ध-विरोधिनी है। इनके पति व पुत्र भी युद्ध के सैद्धान्तिक विरोधी हैं। ये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आर्थिक, राजनीतिक, शिक्षा-सम्बन्धी या आध्यात्मिक समन्वय की पक्षपातिनी हैं। शान्ति-सम्बन्धी सभी संस्थाओं में

का नाम श्री रेने बोवाई था। उन्होंने पिछले युद्ध में काम किया था, पर बाद में शांतिवादी बन गये और १९४७ में तीन मास नजरबंद रहे। पेरी सेरेसोल की अन्तर्राष्ट्रीय शांतिसेना में वे दिल से भाग लेते हैं। यूरोप, रूस और अमेरिका आदि में खूब भ्रमण किया है। उनकी आयु लगभग ५० वर्ष की है। श्री जे० जे० बस्केस हॉलैंड के प्रतिनिधि थे। उनकी आयु भी लगभग ५० वर्ष की है। उन्होंने कई सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। उनमें पश्चिम के लिए गांधी का महत्त्व' भी है। युद्ध के दिनों में विरोधी आन्दोलन में भाग लेने के कारण ६ महीने जेल में रह चुके हैं। 'शांति और धर्म' आदि अनेक संस्थाओं के सक्रिय सदस्य हैं।

फिनलैंड के दूसरे प्रतिनिधि श्री एरिक एवाल्ड्स कुल ३१ वर्ष के हैं। उन्होंने सेना में भरती होने से इन्कार कर दिया था, इसलिए वर्षों लेबर कैम्प में रहना पड़ा था। देश के जिन भागों में स्वीडिश बोली जाती है, वहाँ वे शांति के सम्बन्ध में व्याख्यान देते घूमे हैं। अब वे एक छोटे कल-कारखाने वाले शहर में लोगों के रहन-सहन की हालत में शान्तिपूर्ण तरीकों से आमूल परिवर्तन करने की कोशिश कर रहे हैं। टॉल्स्टॉय के परम भक्त श्री आगा जागेनसेन डेनमार्क से आये थे। वे रूस में टॉल्स्टॉय के घर भी जा चुके हैं। उन्हीं के ग्रन्थों से उन्हें महात्मा गांधी का पता लगा। उन्होंने गांधी व नेहरू की पुस्तकें पढ़ी हैं और वे 'डेनिश इंडियन सोसायटी' के प्रारम्भिक सदस्य हैं। समाजवादी हैं और एक विश्व-राज्य में विश्वास करते हैं। चेकोस्लोवेकिया के डॉ० कारेल हुजूर कुल ४७ वर्ष के हैं पर वे प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्री और भौतिक-शास्त्री हैं। ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करने के लिए वे विश्व के सभी देशों में गये हैं और अनेक महापुरुषों से मिले हैं। गांधीजी के आश्रम में भी व्याख्यान दे चुके हैं। वे आठ भाषाएं बोलते हैं और अब अमेरिका में रहते हैं। गांधी जी के प्रशंसक और भक्त हैं। कई देशों की शान्तिवादी संस्थाओं में सक्रिय भाग लेते रहे हैं और विश्व नागरिकता में विश्वास रखते हैं। बेल्जियम की 'श्रीमती मार्था पूरस का विश्वास है कि समस्त विश्व को गांधीजी की शिक्षा का अनुसरण करना चाहिए। जर्मनों ने उनके देश पर जो अत्याचार किये थे, उनके कारण वे जर्मनों से घृणा करने लगी थीं, पर एक घायल जर्मन सिपाही के मिलने पर

उन्होंने घृणा पर जय पाना सीखा। वे स्थानीय शासन में भाग लेती रही हैं और प्रसिद्ध लेखिका और अध्यापिका हैं। १९२३ से वे शान्तिवादी आन्दोलन की सक्रिय सदस्या रही हैं। वे व्यस्त जन-सेविका हैं और विभिन्न देशों तथा व्यक्तियों में सहयोग और समन्वय की पक्षपातिनी हैं।

जर्मनी के प्रतिनिधि श्री हेनरिच क्रसचुट्ज़की का जीवन अपने सिद्धान्तों के लिए जीने और कष्ट पाने का जीवन है। युद्ध-विरोधी होने के कारण उन्हें बार-बार सजा मिली है। १९३२ में वे जर्मनी से भागकर स्पेन चले गये थे। स्पेन के गृह युद्ध के अवसर पर वे पकड़े गये और उन्हें तीस वर्ष की सजा मिली। १९४५ में ब्रिटेन के राजदूत के बीच-बचाव करने पर वे मुक्त हुए और जर्मनी लौटे। दो वर्ष रूसी ज़ोन में इतिहास पढ़ाया, पर वहाँ से भी निकाले गये। अब वे 'बर्लिन यूथ प्रिजन' में काम करते हैं। वे पूर्व-पश्चिम के विचारों में समन्वय के पक्षपाती हैं। उनकी आयु ५८ वर्ष की है।

उन्होंने कहा था कि भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ शान्तिवादी का सम्मान होता है। जर्मनी के पड़ोसी देश फ्रांस से तीन प्रतिनिधि आये थे। श्री हेनरी रोजर ४१ वर्ष की आयु के व्यक्ति हैं। उन्होंने तीन वर्ष तक युद्ध की शिक्षा पायी थी, पर बाद में वे युद्ध-विरोधी हो गये। इस विश्वास के कारण उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। वे एक पादरियों के वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं और एक छोटे से गिरजे में वहाँ के कार्यकर्त्ताओं की हालत सुधारने में लगे हैं। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं और शरणार्थियों में काम किया है। श्री जेरोम सावरवाहन ३१ वर्ष के तरुण वकील थे। युद्ध में भाग ले चुके हैं, पर बाद में शान्तिवादी बन गये। मैडम मेग्डा ट्रोकमे चुनाव से, जन्म से, विवाह से एक अन्तर्राष्ट्रीय महिला हैं। उनके बच्चों के दादा-दादी व नाना-नानी रूस, जर्मनी, इटली और फ्रांस के रहने वाले हैं। वे अपने पति के साथ शान्ति और मानवता-सम्बन्धी कामों में लगी रहती हैं। युद्ध के दिनों में यहूदियों को आश्रय देने के कारण उनके पति को कैम्प में रहना पड़ा था। उन्होंने एक पाठशाला खोल रखी है, जिसमें वे, पति के साथ अहिंसा का पाठ पढ़ाती हैं। फ्रांस में एक और प्रतिनिधि आये थे श्री गेमैनहून। वे अपने को 'विश्व-नागरिक' मानते हैं। उनकी प्रफुल्लता हमें बड़ी प्रिय लगी थी। उन्होंने बताया था कि वे तो अपने उस मित्र के प्रतिनिधि हैं, जिसने

अमेरिका की नागरिकता स्वीकार न करके अपने विश्वास को जीने का प्रयत्न किया था।

अब हम ब्रिटिश द्वीप समूह की ओर लौट चलें। उनमें कई ऐसे व्यक्ति थे, जिनका नाम भारत के लिए नया नहीं है। सम्मेलन के प्राण श्री होरेस एलेक्जेन्डर और कुमारी मारजोरी साइक्स इग्लैंड के होने पर भी भारत के हैं। श्रीमती मॉड ब्रेयशा और उनके पति श्री रसेल ब्रेयशा 'सोसायटी आव फ्रेण्ड्स' (क्वेकर्स) के सक्रिय सदस्य हैं। श्रीमती ब्रेयशा ६० वर्ष की एक सुगृहिणी और सुन्दर वक्ता हैं। 'शान्ति' और 'क्वेकर्स' उनके प्रिय विषय हैं। श्री ब्रेयशा (७१ वर्ष) बहुत घूमे हैं और दक्षिण अफ्रीका के जातीय सम्बन्धों के बारे में बहुत चिन्तित रहते हैं। व्यवसाय से व्यापारी हैं, परन्तु शान्ति-सम्बन्धी कार्यों में दिलचस्पी लेते हैं। नागरिक घायलों को सहायता देने वाली संस्था 'फ्रेण्ड्स रिलीफ सर्विस' के सभापति हैं। श्रीमती वीरा ब्रिटन भारत के मित्र श्री जार्ज कैटलिन की पत्नी और प्रसिद्ध लेखिका हैं। वे समाजवादिनी और शान्तिवादिनी हैं। वे अब 'पीस प्लेज यूनियन' की अध्यक्षा हो गयी हैं। भाषण-यात्रा के सम्बन्ध में अनेक देशों में घूम आयी हैं। युद्ध काल में उनका साप्ताहिक 'लेटर्स टू पीस लवर्स' बड़ा लोकप्रिय रहा है। उन्होंने बहुत पुस्तकें लिखी हैं। कुछ लम्बी, कुछ पतली वीरा ब्रिटन प्रथम प्रभाव में सुन्दर लगती हैं और उनका व्यवहार उस प्रभाव को कभी नष्ट नहीं करता। सुन्दर बोलती हैं। श्री रेजिनाल्ड रेनाल्ड्स का नाम विशेष परिचय की अपेक्षा नहीं रखता। उनका जन्म १९०५ में हुआ था और डाण्डी-यात्रा के समय वे कुछ महीनों के लिए गांधीजी के साथ रहे थे। वहाँ से लौटकर उन्होंने अपनी 'भारत में गोरे साहब' पुस्तक लिखी। वे अच्छे वक्ता, कवि और लेखक हैं। वे क्वेकर-दृष्टिकोण के समर्थक हैं। श्री विल्फ्रेड वैलांक पार्लामेंट के पुराने मजदूर दलीय सदस्य और भारत के मित्र हैं। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। 'सच्ची शान्ति' और 'सही ग्रामीण आर्थिक पद्धति' के आपसी सम्बन्ध पर भी उन्होंने लिखा है। श्रीमती लूसी किंग्सटन आयरलैण्ड से आई थीं। वे शान्ति-सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेती रही हैं। क्वेकर हैं और आजकल डबलिन में 'सोसायटी ऑव फ्रेण्ड्स' में पुस्तकाध्यक्षा हैं।

भारत से थे श्री आर० आर० कैथान, राजकुमारी अमृतकौर, प० क्षितिमोहन सेन, प० हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री निर्मल कुमार बोस, काका कालेलकर, मादम सोफिया वाडिया, श्रीमती सुशीला पै, श्री छोगमल चोपड़ा, श्री मशरूवाला, श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, प्रो० तानयुन शान, श्री कुमारप्पा, श्री जी० रामचन्द्रन्, श्री आर्यनायकम्, श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम्, श्री कमलनयन बजाज, श्री गुरुदयाल मल्लिक, डा० राजेन्द्र प्रसाद, श्री होरेस एलेक्जेन्डर, कुमारी मारजोरी साइक्स, श्रीमती आगाथा हैरिसन, श्रीमती अमलप्रभादास, श्री अमिय चक्रवर्ती तथा श्री हीरालाल बोस (मंत्री)। पाकिस्तान से सर्वश्री सत्येन्द्रनाथ सेन, जितेन्द्रनाथ कुसेरी, प्रो० के०एम० हसन तथा लंका से श्री गुनपाल पियसेन मललसेकर आये थे।

निस्सन्देह ये सब शान्तिवादी थे। इनके प्रयत्न, अभी वे चाहे कितने ही क्षुद्र क्यों न हों, एक दिन अवश्य फलीभूत होंगे। प्रत्येक बड़ा काम आरम्भ में असम्भव जान पड़ता है, पर यदि उस उचित रीति से लिया जावे तो वह सदा पूरा होता है। हाँ, शान्ति का कार्य ऐसा है, जहाँ गलत समझने और समझे जाने की बड़ी सम्भावना है। इसलिए सजगता की बड़ी आवश्यकता है। सजगता की शर्त है अहंकार का नाश। इसी के बारे में हम शंका है। हम चाहते हैं, किसी तरह हमारी यह आशंका निर्मूल हो।

गोयनका से 'गुरुजी'

आज वह 'गुरुजी' के नाम से प्रख्यात हैं लेकिन फिर भी उनके चारों ओर न तो किसी प्रकार का आडम्बर है, न प्रदर्शन की चकाचौंध। वे अपने साधकों के साथ एकरूप हैं, उनसे विशेष नहीं हैं।

विपश्यना साधना पद्धति बहुत प्राचीन है। अपने बरमी गुरु से सीख कर एक दिन उन्होंने अपने असाध्य सर दर्द पर विजय पाई थी और पायी थी तन और मन की शान्ति। उसी पद्धति को उन्होंने जन-साधारण के लिए सुलभ कर दिया है।

वे अब भारत में हैं। बम्बई के पास उनका एक बहुत बड़ा केन्द्र है। वर्ष में देश-विदेश में अनेक शिविर लगते हैं और असंख्य नर-नारी इस सहज साधना पद्धति के माध्यम से अपने अशान्त और असंयत मन को यथाशक्ति शान्त और संयमित करने में सफल होते हैं।

इस साधना पद्धति के माध्यम से मनुष्य अपनी आँखों से देख सकता है कि उसका शरीर मात्र अणु-परमाणुओं का समूह है। तब इतना ऊहापोह क्यों ? क्यों वासना और कामना का यह खेल ?

यह अहसास होते ही उसकी तृष्णाएँ शान्त होने लगती हैं। जब तृष्णाएँ शान्त हो जाती हैं तो स्व और पर एक हो रहते हैं।

इसी एकत्व की साधना करने वाले गुरु जी कभी रंगून (बर्मा) में एक सम्पन्न व्यापारी थे। नाम था श्री सत्यनारायण गोयनका।

उन्हीं गोयनका जी को मैंने सन् १९६० में रंगून में देखा था तब मेरे मन पर जो चित्र अंकित हुआ था उसको मैंने कुछ इस प्रकार शब्द दिये थे—

मझोला कद, स्थूलता की ओर झुकता शरीर, किंचित् श्यामल-गौर वर्ण, यमुना की तरंगें जैसे गंगा के जल में धँसती हों ऐसे मुख पर तरलता,

पर आवेग रहित, मजगता और कर्मठता की मूर्ति पर शोर का आभास तक नहीं। कुशल व्यापारी पर रुक्षता-हीन। सशक्त कलाकार पर न रूप-वैचित्र्य, न अह का विस्फोट। प्रवासी भारतीयों में प्रमुख परम शान्त—ऐसे श्री सत्यनारायण गोयनका का न जाने कौन सा रूप सत्य है। जन्म से मारवाडी पर अब एकान्त रूप से बर्मी हैं। उस दिन जब रगून जाना हुआ और कस्टम आदि से छुट्टी पाकर हवाई अड्डे से बाहर निकले तो भारतीयों की एक छोटी-सी भीड में से बर्मी वेशधारी एक सज्जन लपक कर बाहर आये और लपाक से बोले, 'विष्णु जी, मुझे तो पहचानते होंगे ?"

और वह हँस पड़े और मैंने देखा—अरे, यह तो सत्यनारायण जी हैं। वही तरल नयन, यूरोप जाते समय एक बार भाई साहब के साथ घर आये थे और मुझ पर उनका पहला प्रभाव यही पड़ा था कि यह व्यक्ति अपने में सीमित सौम्य शान्त है। न है उत्फुल्लता का आवेग, न है तत्परता की द्रुतगति। मैंने कहा, "आप तो इतने अनजाने नहीं हैं, आपको क्यों पहचानूंगा ?"

सब लोग हँस पड़े और उसके बाद हमने पाया कि बर्मा-प्रवास के हमारे आतिथेय यही श्री सत्यनारायण गोयनका है। फिर तो मुगल स्ट्रीट पर उनके भवन की ६५ पैंडियो वाली चौथी मंजिल पर इतनी बार चढना-उतरना हुआ कि अपरिचय को सात पाताल मे भी पनाह नही मिली।

गोयनकाजी पहले प्रस्ताव मे ही सौम्य-शान्त नही जान पडते, वह सचमुच ही चुपचाप काम करने मे विश्वास करते हैं। तूफान-आवेग उनके स्वभाव के विरुद्ध है। काम करने की उतावली भी होगी तो मुख पर व्यस्तता के भाव न होंगे, बल्कि एकाग्रता के साथ तेज-तेज कदम जाते दिखाई देंगे। कोई मिल गया तो आँखो मे वही मुस्कान चमक उठेगी। खुलकर न हँसते हो, सो बात नहीं है, लेकिन प्रदर्शन से उन्हे नफरत है। वह कितने व्यस्त रहते हैं, इसकी कल्पना सरल नही है। उनकी सफलता का कारण यही है कि वह जो कुछ करते हैं, उसमे डूब जाते हैं। ऊपर दिखाई नही देते। वह व्यापारी हैं और मारवाडी व्यापारी। मारवाडी को व्यापार घुट्टी मे पिलाया जाता है। हमने उनको व्यापार की गद्दी पर बैठे देखा है। बड़ला मिल के कम्बलों की दुकान की दुछत्ती मे जब वह बैठते हैं

तो टाइपिस्ट की 'टिप टिप' के अतिरिक्त वहाँ और कोई शब्द नहीं होता। बीच-बीच में वह पुकारते हैं—'टाइपिस्ट'। और 'यस सर' कहती हुई कृषकाय श्यामवर्ण लड़की तुरन्त कापी लेकर आ जाती है। उसे पत्र लिखा कर तथा उचित निर्देश देकर वह फिर फाइलों में खो जाते हैं या आगन्तुक व्यक्तियों से बातें करने लगते हैं। लेकिन सब कुछ यन्त्रवत, घड़ी की सुई जैसे बस चलती ही जाती है, ठहरकर देखती नहीं, क्योंकि ठहरी और मरी। जितनी तन्मयता और दक्षता से वह क्रय-विक्रय की बातें करते हैं, उतनी ही तन्मयता से वह कविता भी सुना सकते हैं। भले ही वह 'ऊँचे कवि' न हों पर उस दिन मेघाच्छन्न आकाश के नीचे, साध्य प्रकृति के सान्निध्य में, रंगून की एक झील में नौका विहार करते समय वह डांड भी चला रहे थे और कविता-पाठ भी कर रहे थे, "ओरी-ओरी ओ इरावदी, मेरे ब्रह्मदेश की भागीरथी।" उस समय उस इन्द्रधनुषी वातावरण में वह कविता सुनकर मन जैसे उमग-उमग आया। लेकिन अखिल बर्मी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर उनके जिस रूप के दर्शन हुए वह एकदम अनोखा था। देखते क्या हैं कि वह न केवल सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष हैं, बल्कि अभिनेता भी हैं। पहले दिन बोले, "विष्णुजी डाक्टरजी (४०२ मुगल स्ट्रीट के डाक्टर ओमप्रकाश) कहते हैं, कुछ होना चाहिए।"

"मैं समझा नहीं, क्या होना चाहिए?"

"आपके पीछे हमने आपका नाटक खेला था। अब आप लोग आये हैं तो वह आपका कोई नाटक खेलना चाहते हैं।"

"अब! दो दिन में नाटक?"

'जी हाँ। आपका एक मोनोलॉग है—'नहीं, नहीं, नहीं', उसे ही प्रस्तुत करने का निश्चय किया है।"

"इतनी जल्दी। कौन करेगा? मोनोलॉग प्रस्तुत करना बहुत कठिन काम है।"

तब धीरे से मुस्कराकर बोले, "मैं ही करूँगा।"

देखता रह गया। सुना था व्यापारी गोयनका साहित्य में रुचि लेते हैं। उनका अपना छोटा-सा पुस्तकालय भी देखा। बर्मा के सांस्कृतिक इतिहास में उनके प्रेम का परिचय भी पाया। यह भी जान चुके थे कि वह

वहाँ की लोककथाओं का अध्ययन कर रहे हैं। कविता भी सुनी थी और यह भी सुना था कि वह नाटकों में भाग भी लेते हैं। पर वह मोनोलॉग को मंच पर प्रस्तुत कैसे करेंगे और वह भी दो दिन में। जो परिचित हैं, वह जानते हैं कि मोनो एक्टिंग कितना कठिन है। कब याद करेंगे, कब रिहर्सल होगी और इन दो दिनों में वह बार-बार कहते रहे, "अभी तो याद ही नहीं हुआ।" लेकिन तीसरे दिन ठीक समय पर जब पर्दा उठा और सत्यनारायण गोयनका ने मंच पर प्रवेश किया, विश्वास करना होगा तब पूरे तीस मिनट तक उन्होंने जनता को मन्त्र-मुग्ध किये रखा। वह नहीं हँसे, लेकिन जनता हँसी। वह उद्विग्न नहीं हुए, लेकिन जनता का हृदय उछल-उछल पड़ा। उन्होंने शेर पढ़े, जनता 'वाह-वाह' कर उठी। एक शब्द भूले नहीं, एक क्षण झिझके नहीं। एक साथ शराबी, शराब से परहेज करने वाले व्यक्ति और प्रेमी का सफल अभिनय किया।

मैं विश्वास नहीं कर सकता था कि यह रेडियो मोनोलॉग मंच पर इतनी सफलता के साथ प्रस्तुत हो सकता है। एक और स्वागत समारोह में उन्होंने हमें एक रेडियो रूपक का टेप रिकॉर्डिंग सुनाया। स्वाधीनता संग्राम के संबंध में वह मेरा ही रेडियो रूपक था। गत वर्ष रंगून रेडियो से डाक्टर ओमप्रकाश ने उससे प्रस्तुत किया था और सूत्रधार का अभिनय किया था गोयनकाजी ने। सुनते-सुनते बार-बार आँखें गीली हो आईं, बार-बार धमनियाँ फड़क-फड़क उठीं। हमारे देश के कुशल अभिनेताओं से किसी तरह भी उनका अभिनय कम नहीं था। कहूँगा अधिक संयत इसीलिए अधिक प्रभावशाली था।

अब तक सुनते आये थे कि इन देशों में भारत से व्यापारी ही गये हैं, लेकिन रंगून में हमने कलाप्रिय भारतीयों का एक दल भी देखा। उन्होंने 'बर्मा भारतीय कला-केन्द्र' की स्थापना की है और उसका उद्देश्य है बर्मा में भारतीय ललित कलाओं को जीवित रखना। प्रधानमंत्री ऊ नू उसके अभिभावक हैं और महानिर्देशक हैं श्री गौतम भारद्वाज। अब तक (१९६०) वह लोग अनेक नृत्य-नाटकों, एकांकियों, रेडियो रूपकों के अतिरिक्त चिरकुमार सभा, स्वर्ग की झलक, काहे नीर बहाये (पैसा, पर आधारित), बिखरे मोती, कलिंग विजय (नवप्रभात पर आधारित), सब

कुछ उधार का, नादान भुगत करनी अपनी (नये हाथ पर आधारित), देर तो है पर अन्धेर नहीं (जमाना पर आधारित), आदि-आदि बड़े नाटक भी पूर्ण सफलता के साथ प्रस्तुत कर चुके हैं। 'उधार का पति, तो हमारे सामने प्रस्तुत किया गया और उसकी अभिनय दक्षता के हम साक्षी हैं। कहीं फूहड़पन नहीं, जरा भी अति नहीं। बर्मी दर्शकों को लोटपोट होते हमने देखा। 'कलिंग विजय' में गोयनकाजी ने सम्राट अशोक का अभिनय किया था, जिसकी स्वर्ग प्रधानमन्त्री ऊ नू ने प्रशंसा की थी।

अभिनय कला की भाँति साहित्य में भी उनकी गति है। उनका विश्वास है कि "बर्मा और भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन और अटूट है। जब तक हिन्द महासागर की उत्ताल तरंगें भारत और बर्मा के तटों का प्रक्षालन करती रहेंगी, तब तक दोनों देशों का यह पावन सम्बन्ध अजर-अमर रहेगा।" इसी सम्बन्ध को पुष्ट करने के लिए उन्होंने अपने घर पर ही बर्मा के अनेक प्रसिद्ध लेखकों को इसलिए आमन्त्रित किया था कि हम उनसे मिल सकें। यद्यपि वह गोष्ठी बहुत संक्षिप्त थी, तथापि एक दूसरे को समझने की दिशा में वह एक महत्त्वपूर्ण कदम था। गोयनकाजी जैसे सांस्कृतिक राजदूतों की जितनी आज आवश्यकता है, उतनी शायद पहले कभी नहीं थी।

गोयनकाजी व्यापारी है, कलाकार हैं, सीमित अर्थों में राजनेता भी हैं। भारतवासियों की राजनीति के क्षेत्र में उनका प्रभाव कम नहीं है। प्रधानमंत्री ऊ नू[1] उनके नेता हैं। वह बर्मी हैं और सच्चे दिल से बर्मी संस्कृति के पोषक हैं। कमीज-धोती, कोट पैंट के साथ बर्मी कमीज और लौंजी भी उन्हें खूब प्रिय है।

बर्मा में हम लोग एक माह से ऊपर उनके अतिथि रहे। उनके सारे परिवार ने हमें स्नेह से सराबोर कर दिया। तब उनकी तत्परता और कार्य-कुशलता देखते बनती थी। भोजन, भ्रमण, मनोरंजन, एक-एक विचरण उनकी दृष्टि में रहता था। जैसा कि यशपालजी का स्वभाव है वह थोड़े

---

१ अब स्थिति बदल गई है। बर्मा में राष्ट्रीयकरण हो जाने के बाद अधिकांश भारतवासी देश छोड़ चुके हैं।

ही समय मे बहुत-कुछ देख लेना चाहते हैं, इसलिए सदा तत्पर रहते हैं। वह तुरन्त गोयनकाजी के पास पहुँचते, और कहते, "चलिए, चलिए, आज जरा पगोडा देखें।" या कहते, "बर्मी सिनमा तो देखा ही नही, चलिए आज भवतदा (जीवन पर्यन्त) फिल्म देख आयें।" और नही तो उन्हे उठाकर नदी किनारे ही घूमन चले जाते। याद नही पडता कभी उन्होंने 'नही' कहा हो। रात को देर-देर तक नदी के तट पर घूमते हुए साहित्य की चर्चा करते या ऊपर के कमरे में ताश खलते या गप्पें हाँकते। लेकिन कभी एक क्षण के लिए भी उन्होंने इस बात का पता नही लगने दिया कि उनके सिर मे कभी-कभी ऐसा दर्द उठता है, जिसका कारण बर्मा, भारत और यूरोप का कोई भी डाक्टर नही बता सका। उसके लिए उन्होंने 'विसपासना रिसर्च एसोसिएशन' नामक एक योग-केन्द्र मे जाकर काफी समय तक एकान्त साधना भी की। उनका खानपान, आचार-व्यवहार इतना संयत और नियमित है कि अचरज होता है। लेकिन बर्मी होली के अवसर पर चार दिन तक वह हमारे साथ जिस प्रकार आनन्द और मस्ती मे बहते रहे, जिस उन्मुक्तता से हँसते खेलते रहे, उससे लगता था जैसे इनके भीतर का व्यापारी कहीं तिरोहित हो गया है। शायद यह उनके अतिथि-सत्कार का एक अंग था। लेकिन देश और विदेश मे उनके अनेक मित्र है। वह सभी का आतिथ्य इसी प्रकार उन्मुक्त होकर करते हैं और मित्र ही क्या, अपरिचित को भी उनके घर मे वैसा ही आदर और स्नेह मिलता है। हम भी तो अपरिचित ही थ। परिचय तो इसी स्नेह के माध्यम से आया।

जैसा कि ऊपर कहा, गोयनकाजी जब जो कुछ करते है, उसमें डूब जाते हैं, उसी के हो जाते है इसीलिए वह सच्चे मित्र हैं। वह शब्दों म नही कर्म म विश्वास करते हैं। इसीलिए उन पर विश्वास किया जा सकता है और इसीलिए वह बर्मा मे भारतीयो के स्तम्भ हैं, जिन पर भारतीयों को विश्वास है, तो बर्मी सरकार को भी पूरा भरोसा है। इसीलिए यूरोप और भारत मे जाने वाले अनेक व्यापार प्रतिनिधि मण्डलो के सदस्य रहे हैं।

गोयनकाजी सचमुच शान्त हैं, पर ऐसे ही जैसे ससार का सबसे बड़ा महासागर 'प्रशान्त महासागर'। पता नही, उसके गर्भ के भीतर कितनी

विविधता है और कितने अद्भुत रत्न यहाँ बिखरे पड़े हैं। यह तो वही जान सकता है, जिसकी दृष्टि ऊपर के तल को भेद कर भीतर झांक सकती है।

गोयनकाजी आज (१९८५) और भी शान्त हैं। उनकी मुस्कान और भी गहरी हो गयी है। उनकी दृष्टि अब आरपार देख लेती है पर परिचय और पहचान की गन्ध वैसी ही महकती है। दिखतेही खिल उठते हैं, 'अहा, विष्णुजी हैं, कैसे हैं विष्णु जी!"

एक अनोखा मार्गदर्शक

वर्ण श्यामता की ओर, शरीर स्थूलता की ओर, स्वभाव रोमांतिक रईसी की ओर, जो कभी आन्दोलनकारी थे, जो आज व्यापारी है ऐसे पंडित शिवप्रसाद शर्मा हमारे लिए तब तक एकदम अनजाने थे जब तक हम सिंगापुर के हवाई अड्डे से बाहर नही निकल आये। २३ मई १६६० की उस रात को जब हम दक्षिण वियतनाम की राजधानी सेगाँव से हिन्द महासागर के पूर्वी छोर पर स्थित मुक्त व्यापार और रोमांस की क्रीडा-स्थली सिंगापुर पहुँचे तो कुछ पता नही था कि कहाँ जाएँगे और कौन हवाई अड्डे पर आएगा। लेकिन कस्टम मे पहुँचते ही एक भारतीय युवक ने हमारा स्वागत किया। आर्य समाज के मंत्री श्रीयुत श्रीधर त्रिपाठी को हम लिख चुके थे। सोचा, वही वह सज्जन हैं। लेकिन परिचय होने पर पाया कि वह उनके मित्र हैं और कस्टम विभाग मे ही काम करते है। बाहर आने पर देखा कि और भी काफी व्यक्ति हमारी प्रतीक्षा कर रहे है। और किन्ही शर्माजी के निवास-स्थान पर हमारे ठहरने का प्रबन्ध है।

पहली रात बातो और नये वातावरण को देखने परखने मे बीत गई। दूसरे दिन सबेरे लगभग १० बजे हमने उपर्युक्त रूपरेखा के एक सज्जन को देखा। लेकिन एक उछटते हुए नमस्कार के अतिरिक्त और कोई बात नही हुई। दोपहर के खाने पर कही जाकर पता लगा कि यही तो हमारे आतिथेय प० शिवप्रसाद शर्मा है। उसके बाद तो वह थे और हम थे। बातो का जो क्रम आरम्भ हुआ सो टूटा ही नही। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का दक्षिणी-पूर्वी एशिया मे क्या स्थान है यह भारत मे बैठकर नही जाना जा सकता। वहाँ के प्रत्येक देश मे, देश के प्रत्येक प्रमुख नगर मे और उस नगर मे बसे हुए प्रत्येक छोटे-बड़े भारतीय के हृदय में नेता जी जैसे मूर्त्त हो चुके हैं। शर्माजी का उनके साथ गहरा सम्पर्क रहा है। उनकी कहानी कहते-कहते

वह कभी तो विह्वल, विभोर हो उठते और कभी भारत के प्रति एकदम कटु।

शर्माजी व्यापारी हैं। उनके स्वभाव में एक व्यापारी, एक रोमामप्रिय घुमक्कड़ और एक साहसी आन्दोलनकारी का अद्भुत समन्वय हुआ है। इसीलिए वार्ता का क्रम जैसे ही मन्द पड़ा, वह हमें कार में बिठा कर घूमने निकल पड़े। फिर कब सध्या गहरी हुई और कब धीरे-धीरे रात्रि का गहन अन्धकार छा गया, यह कोई जान ही नहीं सका। सिंगापुर सही अर्थों में रोमांतिक नगर है। 'खाओ-पीओ और मौज करो' यह भाव वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक स्थान यहाँ तक कि वायुमण्डल के अणु-अणु में प्रति क्षण गूँजता रहता है। चारों ओर समुद्र से आवेष्टित, बीच-बीच में हरितवसना छोटी-छोटी पहाड़ियों, रबड़ के उद्यानों, सघन वन वीथियों, समुद्री सरिताओं और नील-वर्ण झीलों से मण्डित इस द्वीप पर मलयानिल का परस पाकर पत्थर भी जैसे रोमास में उद्वेलित हो उठते हैं। उस रात शर्मा जी जैसे हमें सारा सिंगापुर दिखाने को आतुर हो उठे। अनेकानेक आधुनिक बहुमंजिली विशाल अट्टालिकाओं, विस्तृत राजपथों और मैदानों, समुद्री तटवर्ती क्रीड़ा-उद्यानों को देखते हुए हम नेपाल पार्क में जा पहुँचे। देहाती बस्ती, चारों ओर हरी-भरी पहाड़ियाँ, माउन्ट फैबर पर से समुद्र और नगर का परीलोक जैसा रंगीन दृश्य देखकर लौटे तो नार्थ एण्ड साउथ बोना विस्टा रोड पर आ निकले। रोमास जैसे यहाँ सजीव हो उठा हो। शर्माजी को अपने यौवन-काल की याद आ गई। और जब याद आती है तो आदमी निर्द्वन्द्व हो उठता है।···

आधा सिंगापुर जैसे समाप्त हो चला। हम लोग उसी मस्ती में झूमते हुए हारबर एरिया में होकर पूर्वी किनारे की ओर मुड़ गये और आ पहुँचे बिडोगसी बीच पर। कैसा रोमांटिक दृश्य था। धरती को अपने आँचल में समेटता हुआ शीतल अन्धकार, समुद्र के गर्भ में जगमगाते प्रकाश-पुंज, बादल और विद्युत से विभूषित आकाश और प्रतिपल उड़ान भरते सैनिक विमान जैसे वे विरहाकुल वसुन्धरा का सन्देश निर्मोही आकाश तक पहुँचा रहे हों। हम लोग ईस्ट प्वायन्ट पर पहुँच गये थे। यहाँ एक समुद्र-तटवर्ती रेस्तोराँ में चाय पी और फिर अनेक राजपथों को पार करते हुए एक

विशाल भवन के सामने आ निकले। यही तो शर्माजी का लक्ष्य था। रुक कर बोले—"नेताजी तीन वर्ष तक मकान में रहे थे। यहीं पर आई० एन० ए० का कैम्प और अफसरों का क्लब था। लेकिन अब एक करोड़पति चीनी यहाँ रहता है।" कहते-कहते सहसा वह गम्भीर हो उठे। जैसे आजाद हिन्द फौज के युग में पहुँच गये हों। फिर तो इंडियन इंडिपेन्डेंस लीग, रानी झांसी रेजीमेंट, आई० एन० ए० मेमोरियल बिल्डिंग, दिखाते हुए उन्होंने नेताजी, कैप्टिन गिल और कुमारी लक्ष्मी आदि के न जाने कितने तिक्त-मधुर किस्से सुना डाले।···

यह अपेक्षाकृत लम्बा विवरण शर्माजी के भीतर की व्याकुलता को समझाने की कुंजी है। अवसर पाते ही वह कार लेकर निकल पड़ते। लेकिन सुहावने दृश्य, हरी-भरी प्रकृति, रोमांतिक वातावरण मात्र यही कुछ उनका अभीष्ट नहीं था। कहाँ आई० एन० ए० का स्कूल था, कहाँ दफ्तर, किस पेड़ के नीचे कब कौन आया, किससे मिला। कहाँ और कब नेताजी ने क्या किया। ये सब उन को उसी प्रकार कण्ठस्थ है जिस प्रकार प्राचीन काल में ऋषियों को वेद कण्ठस्थ रहते थे। आई० एन० ए० की बातें करते हुए वह कभी नहीं थकते थे। घूमते-घूमते जब हम आई० एन० ए० गवर्नमेंट के हैड-क्वार्टर पर पहुँचे तो वहाँ 'टू लैट' लिखा हुआ था। आई० एन० ए० के हैडक्वार्टर के स्थान पर आजकल 'चेम्बर' है। यह सब समझाते हुए शर्माजी फिर गम्भीर हो उठे। उस गम्भीरता ने हमें भी छुआ। सोचने लगे—उन दिनों यहाँ कैसा गम्भीर वातावरण रहता होगा। मन्त्रणाएँ होती होंगी। समुद्र के किनारे जमी जहाजों की छाया में देश के दीवाने भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए प्रतिज्ञाएँ लेते होंगे। सहसा शर्माजी बोले—"कैसे थे वे दिन। न 'बीफ' (गोमांस) का प्रश्न, न पोर्क (सूअर का मांस) का, न चोटी की चिन्ता, न दाढ़ी की मुसीबत, तेरह वर्ष की स्वतन्त्रता के बाद भी क्या हुआ है तुम्हारे भारत में···"

"तुम्हारे भारत में? क्या भारत आपका नहीं है?"

शर्माजी तीव्र हो आये। बोले, "हम भारतीय नहीं हैं। हमें तो तुम लोगों ने न घर का रखा न घाट का। ब्रिटिश सब्जेक्ट बना दिया है।···"

उन कड़वी बातों की चर्चा नहीं करूँगा, इसलिए विषय को बदलने की

ओज भरी बातें। दो दिन दो क्षण में बीत गए। मलाया का रोमांटिक सौन्दर्य और कार की वह यात्रा हमारे जीवन की चिरस्मरणीय घटना बन गई और उसी के साथ चिरस्मरणीय बन गई शर्माजी की उदारता। कहाँ किस समय किस भारतीय राजा ने राज्य किया, मलायी स्त्री-पुरुषों का चरित्र कैसा है यहाँ के लोग क्रांतिकारी कैसे बने, क्या वे कम्युनिस्ट हैं और नये राज्य की विशेषताएँ क्या हैं, इन सब की चर्चा करते करते हम क्वालालम्पुर पहुँच गये। २५० मील लम्बा वह सुन्दर मार्ग, दोनों ओर वही हरा भरा वन, बीच बीच में धान के खेत, नारियल और रबर के उद्यान, सागर-सरिताएँ, इस प्रदेश में सौन्दर्य है, सघनता है, विस्तार है और शान्ति भी है। मानवीय प्रकृति यहाँ कामातुरा है तो तपोवन की निर्मलता भी यहीं है। यहाँ क्रान्ति का जयघोष उठता है तो भारतीय, चीनी और मलायी इन तीन जातियों और संस्कृतियों का सम्मेलन भी यहीं हुआ है। यहाँ की सड़कें संसार-भर में श्रेष्ठ मानी जाती है। उन पर कार जैसे बहती चलती है। यहाँ न तीव्र शीत है, न तीव्र ग्रीष्म। ऐसे सुन्दर प्रदेश में शर्माजी जैसे मार्गदर्शक मिल जायें तो फिर पाने को कुछ नहीं रह जाता। मनुष्य को मनुष्य होने के लिए हृदय को विशाल बनाना ही होगा। शर्माजी उसी विशाल हृदय के प्रतीक हैं। उस हृदय में व्यापार भी है, रोमांस भी। रईसी भी है, अदभुत साहस भी है और वह स्नेह भी है जो मनुष्य के मनुष्यत्व को दीप्ति प्रदान करता है।

बहत्तर वर्ष का साधक

जिस समय हम थाई-भारत कल्चरल लॉज के प्रधान श्री राजधन के बंगले पर पहुँचे तो बैंकाक सन्ध्या के आवरण में घिरता आ रहा था। कुछ पैड़ियाँ चढ़कर हमने एक हॉल में प्रवेश किया जिसके दाहिनी ओर के एक प्रकोष्ठ में सोफे पड़े हुए थे। शायद यहीं पर वे अपने अतिथियों से मिलते हैं। हम लोग भी वहीं बैठ गए। मेरे संग थाई-भारत कल्चरल लॉज के प्रमुख प० रघुनाथ शर्मा तथा 'जीवन-साहित्य' के सम्पादक श्री यशपाल जैन थे। हम दोनों साथ साथ ही दक्षिण-पूर्व एशिया की यात्रा पर थे।·· तभी देखता हूँ की बायीं ओर एक बहुत बड़ा क्लॉक लगा है और उसम पूरे सात बज रहे हैं। मिलने का यही समय तो निश्चित हुआ था। खुशी हुई कि हम ठीक समय पर पहुँच गये हैं। इस प्रकोष्ठ म विशेष रूप में हमारा ध्यान खीचने वाली एक अलमारी थी जिसमें बहुत-सी पुस्तकें सुघड़ता से रखी हुई थी। पास ही एक और कमरा था। उसम रखा हुआ टेलीविजन का बड़ा सेट दिखाई दे रहा था। उस समय कोई विशेष कार्यक्रम चल रहा था, क्योंकि एक युवती सहज भाव से पैर फैलाय फर्श पर बैठी उसे देख रही थी।

इसी समय श्री राजधन ने वहाँ प्रवेश किया। उनकी आयु ७२ वर्ष की है, लेकिन वे हँसमुख हैं। इसीलिए स्वास्थ्य न उनसे छल नहीं किया है। थाई भाषा में राजधन का उच्चारण रचथोन होता है। इसी नाम से वह यहाँ लोकप्रिय है। नमस्कार और परिचय आदि के अनन्तर जब हम लोग फिर से बैठ तो मैंने उन्हें याद दिलाया, "मुझे आपसे मिलने का सौभाग्य एक बार पहले भी प्राप्त हो चुका है।"

उन्होंन आश्चर्य से मेरी ओर देखा। मैंने कहा, "आपको शायद याद नहीं आ रहा। यह मार्च १९४७ की बात है। आप एशियाई देशों की

यह कहकर वह हँस पड़े, "है न वही बात—'टू कैरी कोल टू न्यू कैसल," अर्थात् उलटे बाँस बरेली को।"

हम लोग भी हँस पड़े। उन्होंने तुरन्त गम्भीर होकर कहा, "इस समय मैं 'थाई-विश्वकोश' के निर्माण में लगा हूँ। 'नेशनल गजेटियर आफ थाईलैण्ड' भी हाथ में है। लगभग दो हजार पृष्ठ का होगा। लेकिन यह इम्पीरियल गजट आफ इण्डिया की तरह का नहीं है। थाई करेण्ट वर्ड्स' की डिक्शनरी का काम भी कर रहा हूँ। उसमें चार-पाँच वर्ष लग जाएँगे। इसके अतिरिक्त थाई इतिहास के संशोधन का काम भी मेरे जिम्मे है।"

वे फिर मुसकराये। बोले, "अब देखो न, कितने काम हैं। असल में हमारे यहाँ स्कॉलर बहुत कम हैं। मैं ही तो हूँ।"

और वे जोर से हँस पड़े। उस हँसी में हमने भी योग दिया और जब उसका जोर कुछ कम हुआ तो मैंने पूछा, "आपने मौलिक भी कुछ लिखा है?"

वे बोले, "जी हाँ, थाई रीति रिवाज, नारी समाज, संस्कृति, विवाह-पद्धति आदि के बारे में कुछ पुस्तिकाएँ लिखी हैं। एक का अनुवाद मैंने स्वयं किया था, अंग्रेजी में, 'लाइफ आफ ए फार्मर इन थाईलैण्ड'। कुछ लेख भी लिखे हैं। लेकिन मैं अंग्रेजी भी तो इतनी अच्छी नहीं जानता।"

"वर्तमान साहित्य अर्थात् उपन्यास, नाटक, कहानी की आपकी भाषा में क्या स्थिति है?"

"उनका विकास हो रहा है। नये-नये लेखक सामने आ रहे हैं परन्तु मुसीबत यह है कि इनका अध्ययन बहुत कम है। फिर वे पैसे के लिए ही लिखते हैं।"

"और अनुवाद की क्या स्थिति है?"

'सरकार कुछ कर तो रही है, लेकिन अभी तक हमारे यहाँ बर्मा ट्रान्सलेशन सोसायटी' जैसी कोई संस्था नहीं है।"

हमने पूछा, "आपको शायद मालूम होगा कि यूनेस्को संसार की विभिन्न भाषाओं में उत्तम ग्रन्थों का अनुवाद करा रहा है। हमारे देश के रामायण और गीता आदि प्राचीन ग्रन्थों के अतिरिक्त वर्तमान साहित्य में भी पुस्तकें भी हैं। उनमें हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मुंशी प्रेमचन्द का

उपन्यास 'गोदान' भी है। क्या थाई-भाषा का कोई ग्रन्थ चुना गया है?"

वे बोले, "अभी नही। आपकी-हमारी तुलना ही क्या है। आपके यहाँ कितने विश्वविद्यालय हैं। हमारे यहाँ तो केवल एक ही है।"

यशपाल जी का प्रिय विषय है—दो देशो के बीच सास्कृतिक आदान-प्रदान। वह बोले, "दो देशो के राजनीतिक सम्बन्ध स्थायी नही होते, लेकिन साहित्यिक और सास्कृतिक सम्बन्धो की जडें गहरी होती हैं, उनके आदान-प्रदान पर ही हमे जोर देना चाहिए। यह इसलिए और भी अधिक आवश्यक है क्योकि आजकल दुनिया मे राजनीतिक विग्रह बढ रहे हैं।"

वे बोले, "आप ठीक कहते हैं। पर हमारे सामने अनुवाद की कठिनाई है। पैसा भी चाहिए। प्रकाशक भी नहीं हैं। हाँ, फिर भी थाई-भारत सास्कृतिक लॉज-जैसी सस्थाएँ इस सम्बन्ध मे कुछ कर सकती हैं।"

"थाई भाषा के सम्बन्ध मे हमारा ज्ञान नही के बराबर है, लेकिन हमारा विश्वास है कि कुछ चुनी हुई लोकप्रिय पुस्तको का अनुवाद भारतीय भाषाओ मे हो सके तो प्रकाशन की व्यवस्था करने मे कोई कठिनाई नही होगी। अब देखिए, गुजराती के एक सुप्रसिद्ध लेखक है मेघाणी। बर्मा के जीवन पर उन्होने एक उपन्यास लिखा है। मराठी और हिन्दी मे भी उसका अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। ऐसी पुस्तकें हो तो अनुवाद कराया जा सकता है।"

"आपकी बात ठीक है, लेकिन अनुवाद करना कोई सरल काम नही है। भारतीय दूतावास के थर्ड सेक्रेटरी श्री···ने थाई-भाषा सीखी थी। मैं उनका परीक्षक था। जाँच करने पर यही कह सका कि इन्हे पास किया जा सकता है। लेकिन···"

फिर उन्होंने पण्डित रघुनाथ शर्मा की ओर इशारा करते हुए कहा, "हाँ पण्डितजी का थाई-भाषा का ज्ञान बहुत अच्छा है। पण्डितजी अत्यन्त विनम्र व्यक्ति हैं परन्तु अकेले वे क्या कर सकते हैं? योग्य व्यक्ति के अभाव मे यह काम बहुत प्रगति नहीं कर सका है। गाधी जी की किसी भी पुस्तक का अनुवाद नही हुआ है। नेहरूजी की केवल एक ही पुस्तक का अनुवाद पण्डितजी करा सके हैं और वह है 'मेरी कहानी'।

सहसा हमारी दृष्टि घड़ी पर गयी। पौने आठ बज रहे थे। बाहर

अँधेरा भी बढ़ रहा था। पर ये तो पूर्व के देश हैं जहाँ अन्धकार पारदर्शी होता है। ऐसा लगता था मानो उजाला कुछ धूमिल हो चला हो। पण्डित जी ने कहा, "कोई जल्दी नहीं है।"

और इण्टरव्यू चलता रहा। बीच में थाई-सेविका शरबत लेकर आई। और जैसा कि उधर के देशों में होता है, बड़ी विनम्रता से मुख पर मुसकान लिये और घुटने टेककर उसने हम में से प्रत्येक को एक-एक गिलास दिया। इन देशों का शिष्टाचार देखकर बड़ा अद्‌भुत लगता है। श्रद्धा भी होती है। इसी बात को लेकर न जाने कैसे व्यक्तिगत चर्चा चल पड़ी। श्री राजधन बोले, "मैं छह बजे भोजन कर लेता हूँ। धीरे-धीरे शाकाहारी होता जा रहा हूँ। अब तो दूध भी नहीं लेता।..."

मैंने कहना चाहा कि क्या वे महात्मा गांधी की तरह दूध को मांस की श्रेणी में मानते हैं। लेकिन वे तुरन्त बोल उठे, "असल में मैं 'फैट' से बचना चाहता हूँ।"

तभी सहसा मुझे उनके दिल्ली-प्रवास की याद आ गई। मैंने देखा था कि वे वहाँ अकेले रहना ही पसन्द करते थे। पूछने पर उन्होंने बताया था कि यहाँ शोर बहुत है और मुझे शोर पसन्द नहीं है।

मैंने अनुभव किया कि शोर में वे यहाँ भी बचना चाहते हैं और अधिक से अधिक समय लिखने में ही बिताते हैं। पर हम तो उनसे बहुत कुछ जान लेना चाहते थे। वे उच्चकोटि के विद्वान् हैं और इन देशों में रामायण का बहुत प्रचलन है। यहाँ के लोग रामायण की मनौती तक मनाते हैं। मनौती पूरी होने पर मन्दिर में जाकर रामलीला करवाते हैं। सावित्री सत्यवान की कथा को लेकर नाटक भी यहाँ होते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक था कि उनसे हम रामायण के सम्बन्ध में चर्चा करते। मैंने कहा, "थाई-भारत संस्कृति में सचमुच बड़ा साम्य है। आज हम वाट (मन्दिर) देखने गये थे। उनकी दीवारों पर रामायण के अनेक प्रसंग अंकित हैं।"

वे मुसकरा कर बोले, "जी हाँ, संगमरमर पर बहुत-से प्रसंग खुदे हैं, लेकिन वे किस रामायण के आधार पर हैं यह बताना कठिन है। विभिन्न देशों में रामायण के अलग-अलग विवरण मिलते हैं।"

"आपने कौन-सी रामायण पढ़ी है?"

"कई पढ़ी है, पर मैं अध्यात्म रामायण को आधार मानता हूँ। आपके देश में भी तो रामायण के कई रूप हैं। वाल्मीकि, तुलसी, कम्बन, कृत्तिवास आदि आदि। इसी प्रकार इण्डोनेशिया, वियतनाम, मलाया, कम्बोदिया और बर्मा के अपने-अपने रूप हैं।"

"सुना है, बर्मा में तो रामायण यहीं से गई थी?"

"जी नहीं, वहाँ कम्बोदिया से गई थी। और वह हँस पड़े। बोले "पता नहीं कैसे और क्यों बर्मा के लोग थाईलैण्ड को छोड़कर कम्बोदिया पहुँच गये।"

तभी अचानक उन्हें याद आया कि हमारे कार्यक्रम के बारे में तो उन्होंने कुछ पूछा ही नहीं। बोले, "आप कब आये, कहाँ ठहरे हैं, बैंकाक में क्या-क्या देख चुके हैं?"

हमने उन्हें अपने कार्यक्रम के बारे में बताया। कहा, "अभी तो कुछ विशेष नहीं देख सके हैं।"

वे बोले, "म्यूजियम अवश्य देख लीजिए। उसमें आपको हनुमान भी मिलेंगे। लेकिन वे भारत के बाल-ब्रह्मचारी हनुमान नहीं हैं। उनके अनेक विवाह हुए हैं। उनकी प्रेमकहानी लिखी जाये तो दो हजार पृष्ठों में आएगी। यहाँ तक कि उन्होंने एक मत्स्य-कन्या से भी विवाह किया था।"

मैंने कहा, "जी हाँ, इसकी चर्चा तो हमारी रामायण में भी है, लेकिन उसका रूप कुछ और है। *उन्होंने मछली से एक पुत्र उत्पन्न किया है,* लेकिन पसीने के द्वारा। लंका-दहन की थकान उतारने के लिए जब उन्होंने समुद्र में स्नान किया तो एक मछली उनका पसीना पी गई थी। उसी से उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ।"

वे बोले, "जी नहीं, हमारे हनुमान ने सचमुच ही मत्स्य-कन्या से विवाह किया था और वह रावण की बेटी थी। जब रामचन्द्रजी समुद्र पर पुल बाँध रहे थे तो उसमें अड़चन डालने के लिए रावण ने उसे भेजा था। समुद्र के गर्भ में रहकर वह पत्थरों को नीचे खींच लेती थी। इस रहस्य की खोज करने के लिए हनुमान नीचे गये और वहाँ उन्होंने रावण की उस बेटी से प्रेम करके उसे अपने वश में किया था। तो स्त्री-लावण्य के लोभी हमारे हनुमान ऐसे महापुरुष हैं।"

और वे जोर से हँस पड़े। हम सब भी खूब हँसे। रघैयोन परिहासप्रिय व्यक्ति हैं। व्यंग्य भी कर लेते हैं। बोले, "एक और बात बताता हूँ। हमारे हनुमान सीता-राम के पुत्र हैं।"

इस पर रामायण के विभिन्न रूपान्तरों की चर्चा गम्भीर हो उठी। मैंने कहा, 'क्या आप यह नहीं मानेंगे कि आरम्भ में राम की कहानी लोक कथा के रूप में लोकप्रिय थी। उसी के आधार पर विभिन्न कालों में विभिन्न लेखकों ने अपनी-अपनी पुस्तकें अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार लिखीं।"

वे बोले, "जी हाँ, आप ठीक कहते हैं। यही हुआ है। अच्छा हाँ क्या आपने एमराल्ड बुद्धा का मन्दिर देखा है? उसके प्रकोष्ठ की एक मील लम्बी दीवार पर पूरी रामायण चित्रित है।"

'जी हाँ, हमने उसकी बहुत प्रशंसा सुनी है। उसको देखने के लिए ही हम रुक गये हैं।"

यह सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और साहित्य के आदान-प्रदान की जो चर्चा शर्माजी पर आकर रुक गई थी, उसी के सूत्र को फिर से पकड़ते हुए बोले, "देखिए, आदान-प्रदान का यह काम शर्माजी बहुत अच्छी तरह कर सकते हैं।"

शर्माजी हाथ जोड़कर बोले, "मैं तो अब ६३ वर्ष का हो गया हूँ।"

वे शरारत से हँसे। कहा "तो इसमें ९ और जोड़ दीजिए। मैं तो ७२ वर्ष का हूँ। पिछले दिनों जब हांगकांग जाने की बात उठी थी तो डॉक्टरों ने मुझसे कहा था कि अब हम आपकी जिम्मेदारी नहीं लेते। लेकिन मैंने उनकी चिन्ता नहीं की। वास्तव में ये लोग तो इन्श्योरेन्स के कारण ही ऐसा कह रहे थे। नहीं तो और क्या कारण हो सकता है?"

कुछ देर हम लोग गांधीजी की चर्चा करते रहे। काफी समय बीत गया था। इसलिए हमने उनसे आज्ञा चाही। उन्होंने म्यूजियम देखने के लिए एक पत्र हमें दिया। बोले, "आप लोग स्वयं जाएँगे तो आपको एक टिकट देना होगा। लेकिन इस पत्र के रहते हुए उसकी आवश्यकता नहीं होगी। इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति विशेष रूप से आपके साथ रहेगा।"

हम लोग उठे। वे तुरन्त बोले, 'आप अपने पते तो छोड़ जाइए।"

यह कहते हुए वे अन्दर चले गये और एक कागज ले आये। बोले, "क्या आप जानते हैं कि आपके आने से मेरी पत्नी बहुत प्रसन्न है।"

"भले व्यक्ति किसी के भी आने से प्रसन्न ही होते हैं।"

वे हँस पड़े, "जी हाँ, सो तो है लेकिन उनकी इस प्रसन्नता का एक और भी कारण है। जितनी देर आप रहे, मुझको बहुत आराम मिला। इस बात से वह बहुत खुश हैं।"

हमने सप्रश्न उनकी ओर देखा। वह मुसकराते हुए बोले, "आप समझे नहीं? आप यदि नहीं आते तो इतनी देर मैं लिखता ही रहता। मेरे निरन्तर काम करते रहने पर उन्हें बड़ी परेशानी होती है। मेरे स्वास्थ्य के कारण…।"

बातें करते-करते हम लोग बड़े हॉल में पहुँच गये थे। उनकी पत्नी वहीं बैठी हुई थीं। उनके पास जाकर हमने प्रणाम किया। युवा अवस्था में वह सचमुच ही सुन्दर रही होंगी। किंचित् दुबली और लम्बी, वह खूब हँसती हैं और खूब पान खाती हैं। पण्डितजी से उन्होंने थाई-भाषा में कुछ बातें कीं। वे सचमुच अपने पति के स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित रहती हैं। जब पण्डितजी ने उन्हें श्री रघवीन की अन्तिम बात बताई तो वह खिल-खिलाकर हँस पड़ीं, देर तक हँसती रहीं। बोलीं, "सचमुच ही मुझे बहुत खुशी हुई है। यह हर वक्त लिखते रहते हैं, बस लिखते रहते हैं।"

हम लोग तब तक बाहर की ओर मुड़ गये थे। अन्तिम प्रश्न पूछा, "अब आप लोग भारत कब आ रहे हैं?"

वह बोले, "कुछ नहीं कह सकता। अब सफर करना सुविधाजनक नहीं रहा।"

तब तक उनकी लड़की भी हम लोगों में आ मिली थी, लेकिन वह सारे समय हँसती ही रही। वे सब लोग बाहर तक हमें नमस्कार कहने के लिए आये। यशपालजी ने कहा, "हमारी प्रार्थना है कि आप दीर्घजीवी हों और नयी पीढ़ी को आपका मार्गदर्शन मिलता रहे।"

खिड़की से निकलने के पूर्व उन्होंने हाथ जोड़े। बोले, "अब मैं आपको 'स्वस्ति' कहूँगा।"

हम लोगों ने भी 'स्वस्ति' कहा और वे मुड़ गये। हम लोग भी अपने

रास्ते पर आगे बढ चले।

इस बातचीत से कितना कुछ मिला यह खतियाकर देखना व्यर्थ है। पर इतना स्पष्ट है कि अपेक्षाकृत इन कम विकसित देशों की तरफ, जो सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण हमारे बहुत पास हैं भारत का ध्यान जितना चाहिए था उतना नहीं गया है। सोचता हूँ क्या कोई इस चुनौती को स्वीकार करेगा। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है ७२ वर्ष के इस अनथक साधक के प्रति हमारा हृदय श्रद्धा से भर भर उठा था।

देने के लिए जी-जान से जुटा हुआ है।[1]

योद्धा लेखक

उस दिन मेरे साथी कश्मीर के प्रसिद्ध लेखक प्रेमनाथ परदेशी को खोज रहे थे। मुमायश के विशाल प्रागण में, जहाँ देश के युवक युद्ध-सचालन की शिक्षा लिया करते हैं, हमने उनकी विशालकाय मूर्ति को चारों ओर देखा पर वे नहीं मिले। हम लौटने वाले थे कि मेरे साथी बोल उठे, "अरे, वे रहे।"

मैं मुड़ा, "किधर ?"

"उधर," साथी ने सकेत किया और उसी ओर बढ़ गये। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब मैंने देखा— उन्होंने राष्ट्रीय सेना के सैनिक की वर्दी पहनी है और कन्धे पर राइफल लटकाई है। मैंने हँसकर कहा, "कहिए लेखक महोदय ! यह क्या रूप धारण किया है !"

वे मुसकराये, "देश का प्रत्येक नागरिक सैनिक होता है। मैं भी एक सैनिक हूँ। इसमें अचरज की क्या बात है ?"

तब मुझे स्पेन और रूस की याद आ गई। यहाँ के कवि और कथाकार मजदूरों के साथ कन्धे से-कन्धा भिड़ाकर आजादी का युद्ध लड़ें थे।

वे उस वेश म बड़े विचित्र जान पड रहे थे। अधिकाश कश्मीरियो की तरह उनका कद लम्बा और रग रक्तिम गौर है। वे लम्बा कोट पहनते हैं और उनका दुपट्टा उनके प्रशस्त ललाट को ढकता हुआ नासिका तक आया रहता है। अपने चश्मे के साथ वे ठीक एक लेखक जैसे लगते हैं। वे एक सफल लेखक हैं और उनकी रचनाओं मे कश्मीर के वास्तविक जन-जीवन के दर्शन होते हैं। उनके कई कहानी-सग्रह और लगभग दस पुस्तकें बच्चो के सम्बन्ध मे प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके चित्रो मे वर्णन और वेदना का अपूर्व सम्मिश्रण है इसीलिए उनकी कहानियाँ बहुधा चित्र बनकर रह जाती हैं और इसीलिए उनका प्रभाव भी बढ जाता है। वे नाटककार

1 खेद है मासी और परदेशी आज दोनों धरती के स्वर्ग को छोडकर आकाश के स्वर्ग जा विराजे हैं पर अपने वतन को वे आजाद देख गए हैं।

भी हैं और कश्मीर युद्ध के अमर शहीद शेरवानी को लेकर उन्होंने एक सुन्दर नाटक लिखा है। वह नाटक श्रीनगर में खेला जा चुका है।

परदेशी कश्मीर युद्ध के सांस्कृतिक मोर्चे के एक स्तम्भ हैं और पीर अब्दुल अहमद के साथ जनता में जागृति और उत्साह की लौ निरन्तर ऊँची करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इससे पहले वे कस्टम विभाग में काम करते थे, पर उनकी नियुक्ति सांस्कृतिक मोर्चे पर हो गई है। वहीं वे साहित्य की आराधना किया करते हैं। सांस्कृतिक मोर्चे की साहित्यिक गोष्ठियों में उन्होंने उन सात दिनों की रिपोर्ट उपस्थित की थी जिन दिनों कश्मीर पर कबायलियों ने आक्रमण किया था। वह रिपोर्ट एक सुन्दर शब्दचित्र है। परदेशी कवि भी हैं और उनका यह कोरस काफी प्रसिद्ध हुआ है—

आये चन्द लुटेरे, देखो आये चन्द लुटेरे,
जब धरती ने अपनी छाती से सोना उपराया,
एक सुबह सवेरे तब आये चन्द लुटेरे,
देखो आये चन्द लुटेरे,

कलम और राइफल का यह योगदान कश्मीर के युद्धक्षेत्र में एक अद्भुत प्रयोग है। उसकी सफलता पर कश्मीर ही नहीं, विश्व की भाग्य-रेखा का निर्णय हो सकता है।

युवक अभिनेता

वह एक अच्छा गायक और अभिनेता है। कबायली के रूप में जिन्होंने उसका अभिनय देखा है वे मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा करते हैं। साहित्य गोष्ठी में जब वह परदेशी का गीत गा रहा था तो उसकी मुद्रा देखते बनती थी। उसके पास कश्मीर का प्रसिद्ध वाद्ययन्त्र 'तुम्बक नारी' नहीं था परन्तु वह स्टूल से ही काम ले रहा था। उसके नत्र बन्द थे और ग्रीवा स्वर की तान पर झूम झूम उठती थी। उसके सुरीले स्वर में मादकता थी दर्द था और वह धीरे धीरे ऊपर उठती हुई श्रोताओं के हृदय में उमंग की हिलोरें पैदा कर देती थी। वह तन्मयता और आराधना का अद्भुत वातावरण था।

महिला नेत्री

उस दिन जब हम आने के लिए बहुत उत्सुक थे, मैंने नुमायश के मैदान मे एक नारी को देखा। वह बडी तत्परता से इधर से उधर, उधर से इधर आ-जा रही थी। मुझे लगा उसमे कुछ विशेषता है। मेरा ध्यान उस पर केन्द्रित हो गया। वह कई बार मेरे पास से गुजरी। तब मैंने देखा— उसका शरीर गति के साथ हिलता है और तेजी से चलने पर उसकी चप्पलें फट-फटाती हैं। उसके सिर का लम्बा रूमाल कन्धो से होकर पीठ पर लटक गया है और उसके कानो की बालियाँ धूप मे चमक उठती हैं। उसका लम्बा कुरता (फिरन) उसके डील डौल की भाँति फैला हुआ है। जैसा कि स्वाभाविक है उसका रग सेब की भाँति रक्तिम आभा से युक्त है परन्तु नयनो मे श्यामलता नही है गहरी नीलिमा है और उस नीलिमा के पीछे ऐसा कुछ है जो कौतूहल पैदा करता है। मन म उठा—इस नारी मे कुछ-न-कुछ असाधारणता है। तब मैंने वही के एक व्यक्ति से पूछा, 'यह नारी कौन है?"

"अरे, तुम इसे नही जानते !" उसने अचरज से कहा, "यही तो जूनी है।"

"जूनी !' मैंने और भी आश्चर्य से कहा, "वह जिसने महिला आत्म-रक्षा दल का सघटन किया ?"

"जी हाँ।"

"मैं इससे मिलना चाहूँगा।"

मेरे साथी ने आगे बढकर उसे पुकारा और कश्मीरी भाषा मे कुछ कहा। वह उसी स्फूर्ति से झूमती हुई हमारे सामने आकर खडी हो गई और सैनिक ढग से नमस्कार किया। मैंने नमस्कार का उत्तर देते-देते अनुभव किया यदि लियोनार्डो-दा विंची अपनी मोनालिसा को वृद्ध दिखाते तो वह जूनी के समान ही लगती। उसके मुख पर वही रहस्यमयी मुसकान खेल रही थी लेकिन उसके नयनो म ऐसा कुछ था जो उसे साधारण मानव से अलग करता था। मैंने उससे पूछना चाहा

"वह हिन्दुस्तानी नही जानती।" मेरे साथी ने कहा।

मुझे दुख हुआ और साथी की मध्यस्थता मे दो-चार बातें बताकर

जूनी चली गई। उसे अधिक बातें करना प्रिय नहीं है। वह प्रतिक्षण कर्म में डूबी रहना चाहती है। मैंने साथी से पूछा, "क्या इसके मस्तिष्क मे अनोखापन नहीं है ?"

सम्भवत साथी ने मेरा अर्थ नही समझा। कहा, "जूनी मे अद्भुत लगन है। वह यन्त्र की भाँति काम करती है। सुना है, इसका एकमात्र लड़का पिछले आन्दोलन मे मारा गया था।"

"और इसका पति क्या करता है ?"

"कहते हैं उसने इसे घर से निकाल दिया है।"

मन करुणा से भीग आया। मैं एकाएक कुछ कह नहीं सका। जूनी उसी प्रकार कार्य मे व्यस्त थी। उसके साथ और नारियाँ थी। वे मुसलमान भी थीं और हिन्दू भी। वे 'सब आत्म-रक्षा दल' की सैनिकाएँ थी और राइफल चलाना सीख रही थीं। आँखो के आगे वह दृश्य अब भी घूम रहा है। हाथो मे राइफल थामे, स्वास्थ्य और सौन्दर्य की प्रतिमाएँ, कश्मीर की वे नारियाँ, स्थिर पग, दृढ कदम आगे बढी चली जा रही, चली जा रही हैं। उनके मुख पर लज्जा की लाली उभर उभर आती है, उसके नयन गर्व मे उमड पड़ते हैं। वे उस स्थान की ओर जा रही हैं जहाँ न शृङ्गार है, न आमोद-लीला—जहाँ आत्मरक्षा और देशरक्षा के लिए प्राण होम देने का न्योता है।

जूनी के नेतृत्व मे कश्मीर की नारियों ने वह न्योता स्वीकार कर लिया है।

अतिथिगृह का सेवक

उसका नाम साबिर बट है। वह गेस्ट-हाउस का एक सेवक है। पहली बार देखने पर लगता है वह धृष्ट और क्रोधी है। उसका बदन इकहरा है और चेहरा पतला। वह साधारण कश्मीरी से कुछ भिन्न है परन्तु उसकी वाणी में दृढ़ता है और आँखो मे गहन अभिमान। वह सेवक है इसीलिए वह अपने को छोटा नहीं समझता और जो उसे छोटा समझता है उसे वह क्षमा नहीं कर सकता। ऐसे ही एक अवसर पर उसने तीव्रता से मुझसे कहा था, "जनाब ! जमाना पलट गया है। अब हमे आँखें नही दिखाई जा

सकती।" और फिर शीघ्रता से अपनी बाँह आगे करके वह बोला, "मैं वतन का सिपाही हूँ और वतन का सिपाही इज्जत रखता है।"

मैंने देखा—उसकी बाँह पर नेशनल कान्फ्रेंस का लाल झण्डा बँधा है, जिस पर सफेद हल अंकित है।

उसकी आँखें प्रतिहिंसा से चमक रही थीं। मैंने किसी तरह उसे शान्त किया और विश्वास दिलाया कि हम लोग उसकी उतनी ही इज्जत करते हैं जितनी किसी बड़े से बड़े नेता की।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि साबिर वह प्रतिष्ठा का भूखा है। वह समझदार आदमी है और प्रत्येक काम को पूरी जिम्मेदारी से करता है। उसे नेशनल कान्फ्रेंस का सैनिक होने का पूरा गर्व है। एक दिन वर्तमान परिस्थिति पर चर्चा करते हुए उसने तीव्रता से कहा, "जिन्ना रहजन (डाकू) है। उसने हमारी इज्जत पर हाथ डाला है, हम उससे बराबर लड़ेंगा।"

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर वह और भी विश्वास से बोला, "जनाब, मेरी माँ के दादा पंडित थे। पंडित हमारा भाई है। अगर कोई उसकी ओर आँख उठाकर भी देखेगा तो खुदा की कसम, हम उसे गोली से उड़ा देगा चाहे वह कश्मीर का मुसलमान ही क्यों न हो।"

क्षणों के मीत

उस दिन मैं रंगून में था। मेरे साथी ने कहा, 'क्यों न हम आज मौलमीन घूम आएं ?"

मैं तुरन्त सहमत हो गया। जाने की एकमात्र सुविधा वायुयान से थी। पता करने पर मालूम हुआ कि उस दिन किसी भी जहाज में जगह नहीं है, परन्तु साथी बजिद थे कि आज जाना ही है। इसलिए हम स्वयं दफ्तर पहुँचे। चारों ओर बर्मी लड़कियाँ काम में व्यस्त थीं। जिस मेज पर जाते, उत्तर मिलता, "कोई आशा नहीं।"

सहसा साथी की दृष्टि उन सब के बीच में, एक ऊँची मेज पर बैठी, एक सौम्य युवती पर पड़ी। उसका पद शायद कुछ बड़ा था। ताली बजाकर हमने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। उस क्षीणकाय श्यामा ने हमारी ओर देखा, तुरन्त उठकर चली आयी। शायद इसलिए कि हम विदेशी थे। साथी ने कहा, "हम दो लेखक भारत से आये हैं। आज मौलमीन जाना चाहते हैं।"

उसने इस बार अचरज से हमारी ओर देखा। कुछ कहना चाहा, फिर न जाने क्या सोचकर वह मुस्कराई और अपने से बड़े अफसर के पास चली गई। दो क्षण बाद लौटी। धीरे से बोली, "कोई आशा नहीं, लेकिन एक बात कहती हूँ। सामने के कमरे में चले जाओ और वहां जो सज्जन बैठे हैं, उनसे कहो। वे मना करेंगे, लेकिन आप लोग अड़े रहना, काम हो जाएगा। लेकिन मेरा नाम मत लेना।"

उसका नाम मैं आज भी नहीं जानता। पर जैसा उसने कहा था हमने वैसा ही किया। काम हो गया। उस अनजान श्यामा के प्रति आज भी मन कृतज्ञता से भरा हुआ है।

२

मौलमीन के हवाई अड्डे पर उतरते ही सोचा कि शहर जाने से पहले लौटने की सीटें बुक करा लें। बस का ड्राइवर एक अल्हड़-सा युवक था। उसके चेहरे पर एक रहस्यमयी मुसकान थी और आँखों में प्यारी-प्यारी मस्ती। हमारी ओर देखकर वह बोला, "कोई फिकर नहीं। जाने की जगह मिलेगी। आप शहर चलिए।"

दफ्तर शहर में था। वहाँ के अधिकारी से बातें की। उसका उत्तर था, "जगह मिलना नामुमकिन। बहुत भीड़। कई दिन पहले बुक कराना माँगता।"

हमने एक-दूसरे की ओर देखा। वह ड्राइवर उसी सहज भाव से मुसकराया, "कोई फिकर नहीं। शहर जाकर घूमिए। हम इधर हैं। जगह मिलेगी।"

सहसा विश्वास नहीं आया। वहाँ अपना कोई भी तो नहीं था। बार-बार कहने पर अधिकारी ने इतना ही कहा, "कोशिश कर सकता। तीन बजे जहाज जाता।"

ड्राइवर फिर मुसकराया, "कोई फिकर नहीं। तीन बजे आना। जगह मिलेगा।"

और विश्वास कीजिए, हम लोग तीन बजे वहाँ पहुँचे और हमारे लिए दो स्थान सुरक्षित थे। उस अल्हड़ ड्राइवर युवक को क्या हम अनजान ही कहेंगे?

३

बर्मा के शान राज्य में प्रकृति प्रिया ने जिस स्वप्निल सौंदर्य का वितान ताना है, नयन उसमें उलझ-उलझकर रह जाते हैं। हरे भरे बाँस-बहुल वन प्रदेश की सघनता को चीरकर सर्पाकार मार्ग से ऊपर उठती रेलगाड़ी की मन्थर गति तब राही को तनिक भी नहीं खलती। हर ऊँचाई जब घाटी बनकर रह जाती है, तब मन न जाने किस दर्शन में उलझ जाता है। जीवन के शाश्वत पहलू—एक ओर गगनचुम्बी शिखर, दूसरी ओर अतलस्पर्शी घाटी—दोनों मनोरम आकर्षक, दोनों भयानक-विकट"।

सहसा चौककर देखता हूँ कि यशपाल जी बाथरूम में गये और दूसरे ही क्षण उद्विग्न-उत्तेजित लौट आये। बोले, "यहाँ तो पानी ही नहीं है।"

सौभाग्य से गाडी तब तक एक छोटे-से स्टेशन पर रुकी थी और सवेरे वे नाश्ते के लिए व्याकुल यात्रियो ने चारो ओर से चाय की दुकान पर आक्रमण कर दिया। वही मुक्तमना बर्मी नारियाँ, वही चीख-पुकार, वही अविकसित प्रदेश की गरीबी, गन्दगी, देखूँ-देखूँ कि यशपालजी अपने स्वभाव के अनुसार गार्ड को पकड लाए। मुदर्शन बर्मी गार्ड ने कहा "मैं यहाँ क्या करूँ? आप को थाजी जक्शन पर कहना था।"

यशपाल बोले, 'वहाँ रात को कैसे कहता? पानी की जरूरत तो यहाँ पड़ी।"

'तो मैं क्या कर सकता हूँ?"

"यही मैं आपसे पूछता हूँ?"

"मैं कुछ नहीं कर सकता।"

वह शायद हमारी कठिनाई की गुरुता नहीं समझ रहा था, क्योंकि बर्मी लोग कागज का प्रयोग करते हैं। पर यशपालजी उत्तेजित हों, इससे पूर्व ही न जाने क्या सोचकर वह फिर बोला, "एक बाल्टी पानी से काम चलेगा?'

मैंने एकदम कहा, "हाँ-हाँ, अभी तो चलेगा।"

यशपालजी बोले, "नहीं-नही, टकी म पानी चाहिए। मजिल अभी दूर है।"

वह मुदर्शन गार्ड झुँझला आया था। पर हमसे कुछ कह भी नहीं सकता था। भीड़ में और भी कई व्यक्ति अपनी राय देने को उतावले हो उठे। एक सुदृढ डीलडौल वाले युवक ने बर्मा और भारत की तुलना कर डाली। फिर घृणा से भरकर बोला, "य बर्मी···।"

आगे के शब्द न मुझे चौंका दिया। सहसा मेरे मुँह से निकला—

"आप बर्मी नहीं हैं क्या?"

विद्रूप से उसने कहा, "जी नहीं। मैं बर्मी नहीं हूँ। शान हूँ।"

और वह तेजी से भीड में गायब हो गया। हतप्रभ हम सब एक दूसरे को देखते रहे। यशपालजी फिर स्टेशन मास्टर के कार्यालय की ओर लपके

कि सहसा गाडी ने सीटी दी। चकित-विस्मित शत-शत दृष्टियां अविश्वास से इंजिन की ओर उठीं—"यह क्या, अभी तो···।"

लेकिन गाडी पीछे की ओर लौट रही थी। पिछले स्टेशन पर जहां इंजन में पानी देने का पम्प था, वहीं जाकर हमारा डिब्बा रुक गया और देखते-देखते टंकी पानी से भरने लगी। भर चुकी तो गाडी फिर यथापूर्व हो गयी और सुदर्शन गार्ड ने आकर शान्त भाव से कहा, "अब तो ठीक है।"

यशपालजी उसका हाथ झकझोरते हुए बोले, "बहुत-बहुत धन्यवाद!"

मंजिल पर पहुंचते-पहुंचते दोपहर कभी की बीत चुकी थी। प्रकृति की ऊष्मा में आलस्य भर आया था। लेकिन टौंजी के आकर्षण ने यात्रा की थकान को सहला दिया। हम बाहर आये। लेकिन देखते क्या है, एक-एक करके सभी टैक्सियां भर चुकी हैं। भाषा के अज्ञान ने हमको पछाड़ दिया। भारतीय बन्धु भी वहां थे, पर हमें अनदेखा करके सभी चले गये। एक बन्धु से मैंने कहा, "हमारी कुछ सहायता कीजिए। हमें भी टौंजी जाना है।"

वह बोले, "अभी आता हूं।"

पर उनका वह 'अभी' कभी नहीं आया। तब हमने अपने डिब्बे के साथी बर्मी कप्तान की शरण ली। वह टैक्सी में बैठ चुका था। लेकिन उतर आया और यशपालजी को लेकर स्टेशन के एक अधिकारी के पास गया। कहा, "मैं तो रुक नहीं सकता। पर इनके टौंजी जाने का प्रबन्ध आप करें।"

देखता क्या हूं, वही सुदर्शन गार्ड सामने है। मुसकराकर उसने यशपालजी से कहा, "आइए।"

जैसा कि हो सकता था, यशपालजी ने न केवल टौंजी जाने का, बल्कि वापस रंगून लौटने तक के प्रबन्ध का सारा भार उसके कन्धों पर रख दिया और मैं मुसाफिरखाने में इधर उधर घूमते हुए देखता रहा कि कभी वह स्टेशन-मास्टर के कमरे से हवाई अड्डे को टेलीफोन कर रहा है, कभी टाइम टेबुल निकालकर गाडियों की मेल मिलाता है, कभी पोस्ट आफिस जाकर हवाई जहाज की खोज करता है और कभी टौंजी के लिए टैक्सी की। आखिर उसने कहा, "हवाई जहाज का कुछ पता नहीं लगता। टौंजी पहुंच-

कर आप वहाँ के कमिश्नर से मिलिए। वही कुछ प्रबन्ध कर सकता है, तब तक मैं फर्स्ट-क्लास की दो सीटें आपके लिए सुरक्षित किये रखता हूँ। हवाई जहाज में स्थान न मिले तो आपको ट्रेन से ही जाना होगा। टिकट तभी ले लीजिए।"

"और टैक्सी ?"

"अभी लीजिए।"

तभी सेना का एक ट्रक वहाँ आकर रुका। एक भारतीय सिख उसका ड्राइवर था। गार्ड ने उसके पास आकर कहा, "भारत के ये दो लेखक हमारा देश देखने आये हैं। इन्हें टाँगो पहुँचाना होगा।"

सरदारजी ने एक बार हमें देखा। साधारणतया कुछ पैसे लेकर ये लोग यात्रियों को ले जाया करते हैं। पर न जाने क्या सोचकर वह बोल उठा, इन्हें ले जाना हमारा सौभाग्य है।"

सुदर्शन गार्ड मुसकराया। बोला, "तो आइए, अब कॉफी पी लीजिए।"

यशपालजी ने कहा, "हाँ-हाँ, आपने इतना कष्ट उठाया। हमारे साथ कॉफी पीजिए।"

गार्ड की मुसकराहट और मुखर हो गई। बोला, "आप हमारे देश के मेहमान हैं।"

विदा के समय सचमुच मन कुछ भीग आया। बड़े स्नेह से हाथ मिलाकर वह जाने को मुड़ा, तो झिझका, फिर ट्रक के पास आकर उसने धीरे से कहा, "आप सोचते होंगे, मैंने आपकी इतनी सहायता क्यों की ?"

एक क्षण मौन रहकर फिर बोला, "मेरे पिता भारतीय यहूदी थे। मेरी नसों में भारतीय रक्त भी है।"

और वह चला गया।

और मैं सोचता रहा—भारत का रक्त वह हिन्दू व्यापारी तो विशुद्ध भारतीय था। फिर भी उसने···

नहीं-नहीं, मानवता का रक्त से कोई सम्बन्ध नहीं है।

यात्रा का प्रवाह सतत गतिशील था। एक दिन पाया—बर्मा, थाईलैंड, सभी पीछे छूट गये हैं। भारतीय संस्कृति के प्रतीक अंकोरवाट के सुप्रसिद्ध मंदिर देखकर जब हम कम्बोडिया की राजधानी नामपेन के हवाई अड्डे पर उतरे तो न किसी व्यक्ति से परिचय था, न किसी को आने की सूचना तक दी थी। एकमात्र आशा दूतावास पर थी। पर कस्टम से छुट्टी पाकर बाहर आये तो एक भी परिचित चेहरा नहीं दिखाई दिया। अब क्या करें? कि सहसा यशपाल जी बोल उठे, "वह देखो, बाहर एक भारतीय सज्जन दिखाई दे रहे हैं। अवश्य यह दूतावास से आये हैं।"

और वह उनकी ओर लपके। मैं भी सामान सम्हालकर वहाँ पहुँचा। पाया कि वे दोनों एक रोचक वार्तालाप में व्यस्त हैं। इन भारतीय बन्धु ने निरपेक्ष भाव से पूछा, "आप कहाँ से आये हैं?"

यशपाल जी ने उत्तर दिया, "भारत की राजधानी दिल्ली से।"

"क्या करते हैं?"

"पत्रकार और लेखक हैं?"

"यहाँ क्या करने आये हैं?"

"यों ही घूमने-देखने।"

"कहाँ ठहरेंगे?"

"अभी तो कुछ निश्चय नहीं।"

"यहाँ की भाषा जानते हैं?"

"नहीं।"

"तब तो आपको बड़ी कठिनाई होने वाली है।"

यह कहकर वह भारतीय सज्जन मुड़े, बोले, "अच्छा, मैं तो जाता हूँ, मुझे जरूरी काम है।"

और वह चले गये। हम दोनों ने एक-दूसरे को देखा। और उस विषम स्थिति में भी खूब हँसे। पास ही वियतनाम की एक युवती विदा के लिए अपनी छोटी बहन का चुम्बन ले रही थी। उस चुम्बन में इतनी ऊष्मा थी कि उन भारतीय बन्धु की वह निरपेक्षता हम अधिक पीड़ा न पहुँचा सकी। दो क्षण बाद क्या देखते हैं कि एक और भारतीय सैनिक अधिकारी वहाँ

आ पहुँचे हैं। उनका पद ऊँचा था। उसी अनुपात से भाषा में शिष्टता थी। प्रणाम के अनन्तर उन्होंने पूछा, "आप कहाँ से आये हैं?"

"जी, दिल्ली से।"

"कौन हैं?"

"पत्रकार, लेखक।"

"यहाँ घूमने के लिए आये हैं?"

"जी हाँ, घूमने और अध्ययन करने के लिए।"

"किसकी ओर से आये हैं?"

"जी, स्वतन्त्र हैं।"

"कहाँ ठहरिएगा?"

"हम तो अभी यहाँ किसी को जानते नहीं।"

"भाषा तो जानते होंगे?"

"जी नहीं।"

वह मुसकराये, "तब तो आपको बड़ी कठिनाई होने वाली है।" फिर हाथ जोड़े, "क्षमा करेंगे। आवश्यक काम है। जा रहा हूँ।"

और वह भी चले गये।

दृष्टि फिर मिली और वियतनाम की उस युवती की दिशा में उठी। वह भी जा चुकी थी। अब न कोई सम्बल, न सहारा। कहाँ जाएँगे? परन्तु इतने पर भी हम दोनों न व्यग्र थे, न व्याकुल। तभी देखता हूँ कि एक कम्बोजी युवक हमारी ओर लपककर आ रहे हैं। वस्तुतः वह हमारे साथ ही सियमरीयप (अंकोरवाट) से आये थे। एक बच्चे को लेकर हवाई अड्डे पर उनसे कुछ बातें भी हुई थीं। वह शायद देख रहे थे कि दो भारतीय हमसे मिलकर ऐसे विदा हुए हैं जैसे हम कोई अवांछित यात्री हों। पास आकर उस युवक ने अंग्रेजी में कहा, "क्या बात है? आप कुछ कठिनाई में हैं। मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ?"

दृष्टि उठाकर उस युवक को देखा। उसके सौम्य-दर्शन-मुख पर प्यारी-प्यारी मुसकान थी। यशपाल जी तुरन्त बोले, "दूतावास को लिखा था। शायद पत्र उन्हें मिला नहीं।" (वास्तव में पत्र उन्हें बहुत बाद में मिला)।

युवक ने पूछा, "किसी और को जानते हैं ?"

"जानते तो नहीं। पर एक सज्जन का पता हमारे पास है। वहीं जाएँगे।"

"तो फिर दीजिए मुझे वह पता। अभी चलते हैं।"

उनकी इस आकस्मिक भाव-भंगिमा से मैं कुछ अभिभूत सा हो चला था। चुपचाप वह पता उनके हाथ में रख दिया। एक क्षण उसे देखकर युवक ने कम्पनी के बस ड्राइवर को बुलाया और कहा, "ये लोग भारत से आये हैं। इस पते पर जाना है। इन्हें छोड़ने के बाद कम्पनी के दफ्तर म जाना होगा।"

कम्पनी की बसें कम्पनी के दफ्तर ही जाती हैं। वहाँ से हटकर किसी के घर नहीं जाती। लेकिन ड्राइवर ने युवक की बात का प्रतिवाद नहीं किया। बस में हमारे अतिरिक्त शायद एक यात्री और था। वह युवक ड्राइवर के पास बैठा। बातें होने लगीं। मालूम हुआ, वह युवक अपनी पत्नी का तार पाकर यहाँ आया है। बोला, 'न जाने तार क्या दिया है! हवाई जहाज से आने को लिखा है।"

मैंने पूछा, 'कारण कुछ नहीं लिखा ?"

युवक न कहा, 'नहीं। लेकिन वह अस्पताल में है।"

जैसे मेरी वाणी कुछ काँप आई, बीमार हैं क्या ?"

"बीमार तो नहीं है। बच्चा होने वाला है। पहला बच्चा है।"

"ओह! यह बात है। यह तो सृष्टि का नियम है। चिन्ता मत करो। शायद एक प्यारा-प्यारा बच्चा तुम्हारी राह देख रहा है। हम दोनों की बधाई स्वीकार करें।"

उसका मुख एक लजीली मुसकान म आलोकित हो उठा। मंजिल पास आ रही थी। हम नामपेन के बाजार से गुजर रहे थे। चार लाख की आबादी का यह शान्त नगर चार नदियों के संगम पर बसा है। नव विकास के कारण उसका सौन्दर्य और भी निखरता आ रहा है। उस दिन आकाश में बादल थे। कभी-कभी बूँदें भी पड़ने लगती थीं। इस कारण वह और भी प्यारा लगा...

सहसा उस युवक न कहा, 'लीजिए, हम आ गये। वह आपकी दुकान

है। जरा अन्दर जाकर देख लीजिए।"

बस रुकी। हम उतरकर कपड़े की उस विशाल दुकान के भीतर चले गये। एक गुजराती महिला से भेंट हुई। पता लगा जिसके नाम पत्र लाये हैं, उनकी वह पत्नी है। लेकिन पति महोदय कहीं बाहर गये हुए हैं। कुछ भी हो, एक ठिकाने पर पहुँच गये थे। तुरन्त बाहर आकर उस युवक से कहा, 'हम ठीक आ गये हैं।"

युवक ने पूछा, "वह सज्जन हैं?'

"जी, वह तो नहीं है। उनकी पत्नी हैं, आप चिन्ता न कीजिए।"

"नहीं-नहीं," उस युवक ने कहा, "उन सज्जन के न होने में आपको कठिनाई हो सकती है। कहीं और चलें या मैं कुछ प्रबन्ध करूँ?"

यशपालजी बोले, "अब आप अपनी पत्नी के पास जाइए। आपका बहुत-बहुत धन्यवाद और हार्दिक शुभकामनाएँ।"

वही लजीली मुसकान फिर उसके चेहरे पर फैल गई और नमस्कार करके वह चला गया।

उसके बाद हम लोग अपने दूतावास के सेकंड सेक्रेटरी श्री ओमप्रकाश के पास घर से भी अधिक सुख-सुविधा से रहे। उनकी पत्नी का वह आतिथ्य, राजदूत श्री नायक का सौजन्य, वहाँ के भारतीय व्यापारियों का स्नेह—सभी कुछ मधुर था। पर उस अज्ञात नाम कम्बोज युवक की वह मानवीयता, उसका स्मरण करके हृदय आज भी तरल हो जाता है। टौजी का वह वर्मी गार्ड, नामपेन का वह कम्बोजी अफसर...विधाता इन जैसे व्यक्तियों को मानवता की उस मिट्टी से गढ़ता है, जो देश-काल, रंग-जाति, धर्म-वर्ण सबके ऊपर है, सबसे परे है। और यही विश्व का श्रेय और प्रेय है।

उस दिन मास्को के बस स्टैण्ड पर खड़ा था। सब कुछ व्यवस्थित और सुन्दर। सहसा लगा कि किसी ने मेरे हाथ में कुछ रख कर मुट्ठी भींच दी है। अचकचा कर मुड़ा, मुट्ठी खोली, देखा—एक छोटा-सा शिशु जैसा बाबू मेरे हाथ में है।

और भी आश्चर्य हुआ जब मैंने चारों ओर दृष्टि डालने पर पाया कि वैसा ही एक शिशु भागा चला जा रहा है। वह एक युवती के पास जाकर

रुका। वह उसकी माँ थी। दोनों माँ बेटों ने मेरी ओर देखा। मुस्करा कर हाथ हिलाये और लौट चले। मुस्कराया मैं भी था। हाथ भी हिलाये थे पर प्यार के उस अनोखे प्रदर्शन से इतना अभिभूत था कि बस आकर चली भी जाती यदि मेरे एक हमसफर मेरा कन्धा न दबा देते।

आज भी वह शैशव के प्रेम का प्रतीक शिशु चाकू मेरे पास सुरक्षित है। जब भी उसे देखता हूँ तो तरल हो जाता हूँ।

उसके बाद जब बस में चढ़ा तो एक और आश्चर्य मेरी राह देख रहा था। मेरे साथ प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई भी थे। वहाँ बसों में टिकट बाँटने वाले कण्डक्टर नहीं होते। एक मशीन में मूल्य डालने पर टिकट ले लेने होते हैं। हमने आधे रूबल का सिक्का डाला और दो टिकट ले लिये। एक टिकट की कीमत चौथाई रूबल थी तब।

दूसरे ही क्षण पाया कि वहाँ बैठी एक युवती व्यस्त हो उठी है। उसने अपने पति के कान में कुछ कहा। वह उठे और चौथाई रूबल का एक सिक्का मशीन में डाल दिया लेकिन टिकट नहीं लिया।

मैं समझ गया कि कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ है। सौभाग्य से वह युवती अंग्रेजी जानती थी। मैंने पूछा, "क्या बात है। आपने सिक्का डाला पर टिकट नहीं लिया।"

युवती मुस्कराई—"नहीं-नहीं, कुछ नहीं, आप परेशान न हों।"

"नहीं-नहीं, जरूर कुछ बात है। बताइए न।"

बहुत आग्रह करने पर वह बोली, "आपने एक सिक्का डाला था पर टिकट दो लिये थे।"

मैं हँस पड़ा, "तो मेरी शंका ठीक निकली लेकिन आप नहीं जानतीं वह सिक्का आधे रूबल का था।"

अब उसके परेशान होने की बारी थी, बोली, "ओह! तब तो आप ठीक थे। गलती मुझ से हुई। क्षमा कर दीजिए।"

"आपके पैसे···"

"पैसों की चिन्ता मत कीजिए। वह तो अपनी ही सरकार के पास गये हैं।"

और कहते-कहते वह खड़ी हो गई, "आप अब बैठिए यहाँ।"

मैंने कहा, "यह कैसे हो सकता है, आप नारी हैं, पहला अधिकार आपका है।"

वह मुस्कराई, "लेकिन आप तो मेरे देश मे अतिथि हैं। और अतिथि सबसे ऊपर होता है।"

ये शब्द कहने की प्रक्रिया मे उस गर्वीली युवती की मुस्कराती मूर्ति आज भी मेरे मनपटल पर अंकित है।

६

एक-एक करके हमारे दल के सभी छोटे-बडे राजनेता अपने-अपने दुभाषिये लेकर मास्को दर्शन को चले गये। खड़ा रह गया मैं अकेला क्रोध से भरा भरा। हमारी देख-रेख करनेवाली महिला मेरी ओर मुडी। बोली, "आप भी ..."

वह वाक्य पूरा कर पाती कि उबल पड़ा, "तो आपको राजनेताओं से फुरसत मिल गई। आप लोग भी मन्त्रियों और अधिकारियों के पीछे दौड़ते हैं।"

हँस पडी वह महिला, "प्रभाकर जी! राजनेताओं को हमारे सिवा कौन पूछता है। आपके लिए तो सारा मास्को आँखें बिछाये है।"

एक सुन्दर देह-यष्टि वाले सौम्य दर्शन रूसी सज्जन हमारी बातें सुन रहे थे। पास आये, बोले, "कहाँ चलेंगे प्रभाकर जी? मैं आपके साथ हूँ।"

मुझे वहाँ कुछ प्रकाशकों से मिलना था। पैसे भी लेने थे। वे सज्जन सचमुच टैक्सी लेकर मेरे साथ हो लिये। शनिवार का दिन था। एक बज चुका था। प्रकाशक ने कहा, "सोमवार को आने पर पैसे मिल सकते हैं।"

दूसरे प्रकाशक ने भी यही कहा लेकिन तीसरे ने भी जब यही बात दोहराई तो मैं भभक उठा, "सोमवार, सोमवार, आज क्यों नहीं। चालीस रूबल तो टैक्सी के हो गये।"

मेरे साथी फिर मुस्कराये, "एक क्षण रुकिए प्रभाकर जी, मैं मन्त्रालय को फोन करता हूँ।"

फोन पर बातें करने में एक मिनिट लगा। मेरी ओर देखकर बोले,

"दो मिनिट में उधर से फोन आएगा।"

लेकिन फोन दूसरे ही क्षण आ गया। मंत्रालय का आदेश था कि मेरा भुगतान तुरन्त हो जाना चाहिए।

व्यवस्थापिका मुस्कराई, "लीजिए प्रभाकर जी, एक हजार रूबल। ये अब आपके हैं।"

उस दिन मुझे मेरे होटल में छोड़ कर जब वे लौट रहे थे तो मैंने उन्हें चन्दन का पेपर-कटर भेंट किया। उसे लेकर उन्होंने कई बार उसे सूँघा। मुस्करा कर प्रसन्नता प्रकट की और फिर धन्यवाद देकर चले गए। बाद में जान सका कि वह स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टी के बहुत बड़े नेता थे। उनका वह मुस्कराता मांसल मुखमंडल मैं आज पच्चीस वर्ष बाद भी नहीं भूल पा रहा।